इकाई 6 : पशु पालन (एनीमल हसबैन्ड्री) तथा दुग्ध उत्पादन (डेयरी)

6.1 कृषि एवं उद्योग में पशुधन का महत्व

पशुपालन भारत की सामाजिक एवं आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह क्षेत्र ग्रामीण परिवेश में, विशेष कर महिलाओं, भूमिहीन मजदूरों, छोटे और सीमांत किसानों के पारिवारिक आय में वृद्धि के साथ लाभकारी रोजगार सृजन करता है। पशुधन उत्पाद करोड़ों लोगों के लिए सस्ते और पोषक भोजन मुहैया कराता है। इस प्रकार पशुधन का योगदान खाद्य सुरक्षा देने के साथ–साथ देश के गरीबी उन्मूलन में भी है। इस क्षेत्र की प्रगति, पशुओं के साथ जुड़े गरीबों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के साथ प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी है। इसके परिणाम स्वरूप ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास द्वारा शहरी और ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था में अधिक संतुलन पाया गया है। भारत में दुनिया की लगभग 57 प्रतिशत भैंस और 16 प्रतिशत गाय की आबादी है। हमारा देश अब दुनिया में दूध का सबसे बड़ा उत्पादक बन गया है।

सारिणी–1 : पिछले कई दशकों में भारत में दूध उत्पादन और प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता में हुई प्रगति को दर्शाया गया है।

सारिणी–1 : भारत में दूध उत्पादन और प्रति व्यक्ति उपलब्धता		
वर्ष	**दुग्ध उत्पादन (मिलियन टन)**	**प्रति व्यक्ति उपलब्धता (ग्राम/व्यक्ति/दिन)**
1950–51	17	124
1960–61	20	124
1970–71	22	112
1980–81	23	128
1990–91	54	173
2000–2001	81	217
2010–2011	121	281

राज्य में प्रति व्यक्ति भूमि का स्तर कम रहने के कारण बिहार के मामले में पशु पालन को एक विशिष्ट स्थान मिला है। भूमि, जल और मानव संसाधनों का बेहतर उपयोग करने में पशु उत्पाद सहयोग देते हैं। गोधन मानव जाति के लिए अमृत तुल्य दूध उपलब्ध करने के साथ–साथ किसानों को हितकारी जैविक खाद प्रदान करने तथा ग्रामीणों के लिए रोजगार का सृजन करने की क्षमता रखता है। अतएव विकास कार्यक्रम में डेयरी उद्योग की अहम भूमिका होती है। दूध एक संतुलित आहार है जो शिशु, किशोर, युवक, बूढ़े और रोगी सभी के लिए हितकारी है। दूध का उप्योग दही, लस्सी, मख्खन, घी, पनीर, राबड़ी, खोया, कुल्फी इत्यादि के रूप में किया जाता है। हमारे समाज के सभी वर्ग के लोगों द्वारा चाहे वे किसी भी जाति, लिंग, धर्म या आर्थिक स्थिति के हो, दुग्ध उत्पादन की व्यवसाय को सहर्ष स्वीकार कर लेते है। ग्रामीण समुदाय के लिए दुग्ध उत्पादन को एक पूरक व्यवसाय माना गया है। आय के सृजन और ग्रामीण रोजगार के लिए यह सबसे अधिक प्रभावी साधन है।

बकरी पशुधन की एक मुख्य घटक है। बकरी "गरीब की गाय" कहलाती है क्योंकि इसके पालन के लिये कम संसाधन की आवश्यकता होती है और यह गरीबों को दूध का सस्ता स्रोत प्रदान करती है। यह छोटी और ढीठ जानवर होती है। यह चरनेवाली जानवर है जो अनेकों प्रजाति के पौधों को खाती है और किसी भी पशुधन की तुलना में जंगल–झाड़ी में चर कर पेट भरने में कुशल होती है और विशेष कर पेड़ों की पत्तियाँ तथा छाल, झाड़ियाँ आदि चरती हैं। इसकी चरने के विशेष आदत के कारण यह जंगली तथा बंजर भूमि में भी गुजर कर लेती है और घास की अनावश्यक वृद्धि को रोक देती है, यही कारण है कि बकरी उस क्षेत्र में गरीब ग्रामीणों की एक आशा है जहां आसानी से अन्य जानवर पाले नहीं जा सकते हैं।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में भेड़ पालन का महत्व सर्वविदित है। यह घूम–घूम कर चरने वाला जानवर है। सुखाड़ पीड़ित

क्षेत्र में अच्छी तरह जिन्दा रह सकता है। फसल उत्पादन एवं दुग्ध उत्पादन की तुलना में बकरी पालन की तरह यह भी कम खर्च का व्यवसाय है। शीघ्र परिपक्वता, उच्च जनन क्षमता, छोटी गर्भावधि और अधिक आहार रूपांतर क्षमता इत्यादि भेड़ पालन की अन्य विशेषताएं है जो अल्प आय वाले भूमिहीन श्रमिकों और सीमांत किसानों के लिए उपयुक्त है।

दूध के बाद चमड़े का उत्पादन और मांस के उत्पादों से पर्याप्त आय होती है। पशुधन और उससे संबंधित उत्पादों के निर्यात में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सुखाड़, अकाल आदि के समय जब कृषि कार्य काफी प्रभावित होता है तब पीड़ित ग्रामीणों के लिए पशुधन, आहार तथा आय का साधन मुहैया कराते हैं।

❋❋❋❋❋

6.2 केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा पशुपालन क्षेत्र में चलाई गई महत्वपूर्ण विकास कार्यक्रम

गाय और भैंस प्रजनन के लिए राष्ट्रीय परियोजना

गाय और भैंस प्रजनन की राष्ट्रीय परियोजना का प्रमुख उद्देश्य देशी नस्लों व प्रजातियों में पर्याप्त जेनेटिक सुधार द्वारा उत्तम गुणों को विकसित करते हुये इन नस्लों का संरक्षण एवं विकास करना है। गाय और भैंस प्रजनन राष्ट्रीय परियोजना भारत सरकार द्वारा संचालित की जाती है। ग्लोबल वार्मिंग शुद्ध वातावरण के लिये प्रमुख समस्या होती जा रही है और इसका असर हमारे देश के संकर पशुओं पर अधिक पड़ रहा है। विषाणुजनित वायरल रोगों तथा प्रोटोजोआ जनित परजीवी रोगों की संख्या में काफी वृद्धि हो रही है तथा निरन्तर इसके बढ़ने की संभावना है। देशी नस्लों के मवेशियों में विशेष रूप से उच्च तापमान सहनशीलता, रोग प्रतिरोधक क्षमता जैसे गुण बेहतर होते हैं। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में देशी नस्लों के मवेशियों के इन सब गुणों के महत्व को ध्यान में रखते हुए सरकार उनके विकास और संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित कर रही है।

पशु रोगों की रोकथाम के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम

स्वस्थ पशुओं की वृद्धि सही रूप से होती है और वे ज्यादा से ज्यादा उत्पादन के लिये सक्षम होते हैं इसलिए पशु रोगों की रोकथाम के लिए सरकार द्वारा एक राष्ट्रीय कार्यक्रम चलाया जा रहा है जिसके तहत पूरे राष्ट्र में पशुओं में होने वाले बीमारियों की जाँच के लिए प्रयोगशालाओं की स्थापना की गई है जिनमें विभिन्न रोगों से बचाव के लिए टीका उत्पादन तथा उनके गुणवत्ता के जाँच की भी व्यवस्था है।

गहन डेयरी विकास कार्यक्रम

दुधारू पशुओं का विकास करना, तकनीकी इनपुट सेवाएँ प्रदान करके दूध उत्पादन में वृद्धि लाना, प्रभावी ढंग से दूध की खरीद, प्रसंस्करण और विपणन में सुधार करने के लिए बुनियादी ढांचे का निर्माण करना, दुग्ध उत्पादकों के लिये लाभकारी मूल्य सुनिश्चित करना, ग्रामीण स्तर पर डेयरी सहकारी समितियों को मजबूत बनाकर अतिरिक्त रोजगार के अवसर पैदा करना तथा तुलनात्मक रूप से वंचित क्षेत्रों के निवासियों के सामाजिक पोषण और आर्थिक स्थिति में सुधार लाना इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य रहे हैं।

समग्र गव्य विकास योजना

इस योजना के अंतर्गत राज्य के डेयरी क्षेत्र में दुग्ध उत्पादन में वृद्धि कर उसे प्रसंस्करण, संरक्षण एवं विपणन से संबंधित सभी आवश्यक कार्यवाहियाँ की जाती है। डेयरी क्षेत्र अपनाने में इच्छुक कृषकों के लिए स्वरोजगार और आय में वृद्धि के अवसर उत्पन्न करने के साथ इन सब कार्यों के लिए आवश्यक आधारभूत संरचना एवं प्रशासनिक तथा पर्यवेक्षण तंत्र का विकास करना ही इस योजना का मुख्य उद्देश्य है।

राष्ट्रीय कुक्कुट विकास परियोजना

कुक्कुट इकाई भारत में कृषि क्षेत्र की सबसे तेजी से बढ़ते क्षेत्रों में से एक है। भारत दुनिया में अण्डे का पांचवा और कुक्कुट मांस का नौवां सबसे बड़ा उत्पादक है। पोल्ट्री उत्पादन में भारत विश्व में 17 वें स्थान पर है। इस क्षेत्र में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सहायता से कुक्कुट के कई बेहतर नस्लों का विकास कर, अधिक उत्पादन लक्ष्य प्राप्त करने में सफलता मिली है। बैक्यार्ड मुर्गी फार्मिंग ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे रहनेवाले लोगों विशेष कर ग्रामीण महिलाओं के लिए रोजगार के अवसरों को उत्पन्न कर वांछित सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान करने में मदद करता है।

केन्द्र प्रायोजित विकास योजनाएं

गरीबी और बेरोजगारी भारत के विकास की प्रगति के लिए एक अभिशाप के रूप में माने जाते हैं। इनके निराकरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 282 के तहत केन्द्र सरकार के अनुदान से केन्द्र प्रायोजित योजनाएं कम से कम पिछले दस पंचवर्षीय योजनाओं से अधिक समय से राज्य सरकारों द्वारा लागू की गयी हैं। केन्द्र प्रायोजित योजनाओं का मुख्य उदेश्य मानव विकास को न्यायोचित और टिकाउ ढंग से बढ़ावा देना तथा गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले आबादी का आर्थिक विकास करना है। इन योजनाओं में से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं :

(क) स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना

स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY) 1 अप्रैल, 1999 के प्रभाव से ग्रामीण गरीबों के स्वरोजगार के लिए एक एकीकृत कार्यक्रम के रूप में शुरू की गयी थी। यह योजना लाखों ग्रामीणों को स्वरोजगार उपलब्ध कराने में सफल हुई है। स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से ग्रामीणों को स्वरोजगार उपलब्ध कराने में मदद करती है। इस परियोजना के लिए गैर सरकारी संगठनों, बैंकों और वित्तीय संस्थानों द्वारा वित्तीय सहायता दी जाती है तथा योजना के अंतर्गत गाय पालन, बकरी पालन, मुर्गी पालन जैसे पेशों को अपनाया जाता है। जो ग्रामीण परिवेश में रोजगार सृजन करने के साथ साथ दूध, अंडा एवं मांस जैसे पौष्टिक खाद्य पदार्थों का उत्पादन कर हमें खाद्य क्षेत्र में सुरक्षा भी प्रदान करते हैं।

आज लोगों की योग्यता और कौशल के आधार पर स्थापित पेशा समूह, अपनी अधिकतम क्षमता से उत्पादन कर रहे हैं तथा अपने स्वजनों का पोषण करने के अलावा अतिरिक्त लाभ से अपना जीवन स्तर भी सुधार रहे हैं।

(ख) प्रधान मंत्री रोजगार योजना

यह योजना शिक्षित बेरोजगार युवाओं को स्वरोजगार उपलब्ध कराने या निरंतर रोजगार प्रदान करने के लिए लागू की गयी है। इसमें 18–35 वर्ष के बीच आयु वर्ग के युवा जो आठवीं कक्षा पास किए हों तथा जिनकी पारिवारिक आय सालाना 40000 रुपये से कम हो इस परियोजना से लाभान्वित हो सकते हैं। यह परियोजना जिला उद्योग केन्द्र द्वारा प्रायोजित होती है। योजना के अन्तर्गत कुल दो लाख रुपये ऋण प्रदान किया जाता है तथा सरकार द्वारा परियोजना की लागत का अधिकतम 15 प्रतिशत या 7500/– रुपये सब्सिडी प्रदान की जाती है, इस परियोजना के अंतर्गत उदयमी डेयरी तथा उससे सम्बंधित अन्य उद्योग जैसे गाय पालन, बकरी पालन, मुर्गी पालन के साथ–साथ फीड फैक्ट्री, आइसक्रीम फैक्ट्री, पनीर फैक्ट्री आदि स्थापित कर अपनी नियमित आय का एक स्रोत बना सकते हैं।

ऑपरेशन फ्लड

भारत में ऑपरेशन फ्लड, राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड (एन॰डी॰डी॰बी॰) की एक परियोजना है जो कि दुनिया का सबसे बड़ा डेरी विकास कार्यक्रम है। इस परियोजना के फलस्वरूप भारत 1998 में संयुक्त राज्य अमेरिका को पछाड़ कर दुनिया में सर्वाधिक दुग्ध उत्पादक देश बन गया है और 30 सालों में प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता दोगुनी हो गई है। इसके अलावा डेयरी फार्मिंग ने भारत की सबसे बड़ी आत्मनिर्भर ग्रामीण रोजगार सृजन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस सफलता का सारा श्रेय श्री वर्गीज कुरियन को जाता है जिन्हें भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने एन॰डी॰डी॰बी॰ का अध्यक्ष बनाया था। श्री वर्गीज कुरियन ने अपने पेशेवर प्रबंधन कौशल से इस परियोजना को सफलतम ऊँचाई तक पहुँचाया।

ऑपरेशन फ्लड के तहत देश भर के दुग्ध उत्पादकों को 700 से अधिक शहरों और कस्बों में उपभोक्ताओं के साथ जोड़ने के लिए एक राष्ट्रीय दुग्ध ग्रिड बनाया गया। इससे दुग्ध के मूल्य पर मौसमी और क्षेत्रीय विविधताओं के प्रभाव को कम करने में मदद मिलने के साथ–साथ कदाचार को भी कम किया गया।

ऑपरेशन फ्लड के आधार पर देश के गाँव–गाँव में स्थापित दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियाँ है जो अपने सदस्यों से उचित दर पर दूध की खरीद करती हैं और साथ–साथ उन्हें आधुनिक प्रबंधन और प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराती हैं।

ॉपरेशन फ्लड के उद्देश्यों में शामिल हैं :

देश में दुग्ध उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि लाना

ग्रामीण जनता की आय में वृद्धि लाना

उपभोक्ताओं को उचित दाम पर दुग्ध एवं दुग्ध उत्पाद को मुहैया करना।

ऑपरेशन फ्लड तीन चरण में लागू किया गया था जिसकी शुरुआत 1970 से ले कर 1996 तक रही इसकी विस्तृत जानकारी निम्नवत् है।

ऑपरेशन फ्लड–1

पहले चरण में ऑपरेशन फ्लड–1 लागू किया गया था जिसकी अवधि 1970 से 1980 तक थी। इस दौरान दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता और चेन्नई जैसे भारत के प्रमुख महानगरों के उपभोक्ताओं के साथ भारत के प्रमुख 18 मिल्कशेड जोड़ दिए गए। इस प्रकार चार महानगरों में मदर डेयरियों की स्थापना की गई और महानगरों में दूध विपणन में सुधार लाया गया। दूध के उत्पादन और खरीद दोनों में वृद्धि करने के साथ, ग्रामीण क्षेत्रों में डेयरी क्षेत्र का विकास किया गया। यह परियोजना यूरोपीय संघ द्वारा दान में दी गयी स्किम्ड दूध पाउडर और नक्खन तेल की बिक्री से वित्तपोषित होती थी और इसमें कुल 116 करोड़ रुपये की लागत आई थी। इस परियोजना की समाप्ति 1979 में हुई।

ऑपरेशन फ्लड–2

ऑपरेशन फ्लड द्वितीय चरण (1981–1985) के दौरान मिल्क शेड की संख्या 18 से बढ़ा कर 136 की गई। 290 शहरी बाजारों के दूध के लिए दुकानों का विस्तार किया। 1985 के अंत तक 4250000 दूध उत्पादकों के साथ 83000 ग्रामीण सहकारी समितियों को जोड़ कर एक आत्मनिर्भर प्रणाली को विकसित किया गया। सन् 1989 में परियोजना के तहत् पूर्व वर्ष के 22000 टन उत्पादन की तुलना में घरेलू दूध पाउडर का उत्पादन 140000 टन किया गया जो ऑपरेशन फ्लड के तहत विकसित डेयरी प्लांट से संभव हुआ। इस तरह यूरोपीय संघों के दान एवं विश्व बैंक के ऋण की सहायता से भारत दुग्ध उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया।

ऑपरेशन फ्लड–3

ऑपरेशन फ्लड के तृतीय चरण 1985–1996 में डेयरी सहकारी समितियों द्वारा दुग्ध के खरीद और बिक्री की मात्रा में वृद्धि करने के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचे में विस्तार किया गया। इसके साथ सहकारी समितियों के सदस्यों को बीमार पशुओं के लिए प्राथमिक चिकित्सा, स्वास्थ्य, देखभाल, और कृत्रिम गर्भाधान सेवाओं के बारे में प्रशिक्षण दे कर उनके ज्ञान का विस्तार किया गया।

ऑपरेशन फ्लड तृतीय ने भारत में डेयरी सहकारी आन्दोलन को समेकित कर द्वितीय चरण के दौरान 42000 मौजूदा डेयरी सहकारी समितियों में 30000 नए डेयरी सहकारी समितियाँ को जोड़ने को काम किया। इस दौरान कुल मिल्कशेड की संख्या को 18 से बढ़ाकर 173 तक की गयी तथा डेयरी सहकारी समितियाँ के सदस्यों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी एवं महिला डेयरी सहकारी समितियों की संख्या में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। इस चरण में पशु स्वास्थ्य और पशु पोषण के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास के लिए ज्यादा जोर दिया गया। पशु पोषण के क्षेत्र में बाईपास प्रोटीन, यूरिया, गुड़ खनिज ब्लॉकों जैसे अभिनव विचार तथा थेईलेरिओसिस जैसे घातक बीमारियों की रोकथाम के लिए टीके का उत्पादन, दूध उत्पादन में वृद्धि के साथ, पशुओं की उत्पादकता बढ़ाने के लिए भी प्रयास व अनुसंधान किये गये।

मने सीखा

पशुपालन, भारत की सामाजिक एवं आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारत में स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY) पहली अप्रैल सन् 1999 से लागू की गई थी, जिसका मुख्य उद्देश्य एकीकृत कार्यक्रम के तहत गरीब ग्रामीणों को स्वरोजगार उपलब्ध कराना था।

- पशुपालन हमें खाद्य सुरक्षा प्रदान करते हैं एवं देश के गरीबी उन्मूलन में पशुधन का महत्वपूर्ण योगदान है।
- भारत में दुनिया के लगभग 57 प्रतिशत भैंस और 16 प्रतिशत गाय की आबादी है।
- दूध एक संतुलित आहार है जो शिशु, किशोर, युवक, बूढ़े और रोगी सभी के लिए उपयोगी है।
- भारत अब दुनिया का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश बन गया है।
- भारत में ऑपरेशन फ्लड दुनिया का सबसे बड़ा डेयरी विकास कार्यक्रम है।
- ऑपरेशन फ्लड के आधार पर देश के गाँव–गाँव में स्थापित दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियाँ है ।
- ये समितियाँ सदस्यों से उचित दर पर दूध की खरीदारी करती है और साथ ही उन्हें आधुनिक प्रबंधन और प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराते हैं।
- ऑपरेशन फ्लड तीन चरण में लागू किया गया था।

अभ्यास

निम्न पर (✓) या (x) का निशान लगाइए :

(अ) पशुपालन लाभकारी रोजगार का सृजन करता है ( )

(ब) भारत में दुनिया की लगभग 57 प्रतिशत भैंस की आबादी है ( )

(स) स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री भारत में ऑपरेश फ्लड के जनक कहलाते हैं ( )

(द) सूखा पीड़ित क्षेत्र में भेड़ पालन आसानी से किया जा सकता है ( )

(य) भारत दुनिया में दूध का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। ( )

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

(अ) ऑपरेशन फ्लड के सारा श्रेय ..... को जाता है।

(ब) भारत में लगभग दुनिया के ..... प्रतिशत गाय की आबादी है।

(स) ..... परियोजना शिक्षित बेरोजगार युवाओं को स्वरोजगार उपलब्ध कराने के लिए लागू की गई है।

(द) भारत में ऑपरेशन फ्लड ..... चरणों में लागू किया गया था।

(य) ग्रामीण परिवेश में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों को स्वरोजगार मुहैया कराने के लिए ..... योजना ला की गयी है।

मिलान कीजिए :

कालम "क"	कालम "ख"
(अ) बकरी	( ) संतुलित आहार
(ब) दूध	( ) सुखाड़ क्षेत्र
(स) भेड़	( ) गरीब की गाय
(द) शिक्षित बेरोजगार	( ) स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना
(य) गरीबी रेखा के नीचे के लोगों	( ) प्रधान मंत्री रोजगार योजना

6.3 पशुओं एवं कुक्कुटों की प्रमुख नस्लें

जाति (Breed) पशुओं का वह समूह है जिनका रंग आकार और लक्षण एक समान हो और जो अपने जैसे संतान की उत्पति करते हों।

गाय की जातियाँ

मुख देशी नस्लें

उपयोगिता के आधार पर गाय की जातियों को निम्न तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

दुधारू जाति (Dairy breeds) :इस जाति की गायें ज्यादा दूध देती हैं लेकिन उनके बैलों में भारवाहन की क्षमता कम होती है। उदाहरणर्थ : साहिवाल, रेड सिन्धी, गिर एवं रथी।

भारवाहन जाति (Draught breeds) : इन जातियों की गायें बहुत कम दूध देती हैं लेकिन इनके बैल बहुत ही शक्तिशाली होते हैं और खेती तथा भारवाहन के लिये उपयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थः अमृतमहल, बछौर, डांगी, हेलकर आदि।

द्विकाजी जातियाँ (Dual purpose breeds) :इस जाति की गायें दूध भी ज्यादा देती हैं ओर इनके बैल अच्छे भारवाहक भी होते हैं। उदाहरणार्थः हरियाणा, थारपारकर, देउनी, कंकरेज आदि।

मुख दुधारू जातियाँ (Dairy breeds)

साहीवाल : इसका दूसरा नाम मोन्टगोमरी एवं लोला भी है। यह गाय की सबसे अच्छी दूध देने वाली नस्ल है। इसका मूल स्थान पाकिस्तान का मोन्टगोमरी (अभी साहिवाल) जिला है। ये पंजाब के फिरोजपुर एवं अमृतसर जिलों, हरियाणा, राजस्थान आदि प्रदेशों में पायी जाती हैं।

यह भारी शरीर एवं ढीली त्वचा वाली जाति है। इसका शरीर लम्बा, गहरा और मांसल होता है। इसका रंग गहरा लाल से कत्थई या भूरा (Redish dunn or pale red or brown) होता है। नर में कूबड़ (Hump) भारी तथा एक तरफ झुका होता है जबकि मादा में यह प्रायः सीधा रहता है। दुग्धशिरा एवं अयन विकसित होते हैं। इसकी औसत प्रति ब्यात दूध 2326 कि॰ ग्राम (1600 से 3750 कि॰ ग्राम) होती है।

ड सिन्धी (Red Sindhi)

इस जाति का मूल स्थान पाकिस्तान के कराची और हैदराबाद जिले हैं। ये भारत के विभिन्न प्रान्तों जैसे उड़ीसा, तमिलनाडू, बिहार, आसाम और केरल के संगठित प्रक्षेत्रों में पाये जाते हैं।

यह मध्यम आकार की तथा बहुत ज्यादा दूध देने वाली नस्ल है।

रेड सिन्धी का रंग लाल होता है। माथे एवं गलकम्बल पर कभी कभी उजले धब्बे देखे जा सकते हैं। इसका बदन सुडौल, माथा चौड़ा व समतल तथा अयन विकसित होता है। थूथन काला होता है। नर में कूबड़ विकसित तथा मादा में मध्यम आकार का होता है। इसकी औसत प्रति ब्यात दूध 1840 (1100–2600) कि॰ ग्रा॰ होती है।

र (Gir)

यह गाय की ऐसी दुधारू जाति है जो विश्व में कम पोषण के साथ भी अधिक दूध देती है और इसमें रोग निरोधक क्षमता भी ज्यादा है। इसका मूल स्थान गुजरात के गिर जंगलों में है। लेकिन यह महाराष्ट्र और राजस्थान के निकटवर्ती इलाकों में भी पायी जाती है। इसका मुख्य रंग लाल (पीला लाल) है लेकिन पूरे शरीर पर गहरे लाल और चाकलेट भूरे रंग के धब्बे वाली उजली रंग की गायें भी पायी जाती हैं। इसका सिर चौड़ा, लम्बा और आगे की तरफ निकला हुआ होता है। इसके कान लम्बे तथा लटके हुए होते हैं जो पत्ते की तरह मुड़े होते हैं । यह प्रति ब्यात ओसतन 2110 (1800–3300) किलो ग्राम दूध देती है।

थी (Rathi)

यह दुधारू जाति की दूध देने वाली अच्छी भारतीय नस्ल की गाय है जो मुख्यतः राजस्थान के बीकानेर जिले में पायी जाती है। इसमें गर्मी तथा सूखे के प्रति काफी सहनशक्ति होती है। इसमें रोग प्रतिरोधक क्षमता काफी होती है।

यह मध्यम आकार की जाति है जिसका शरीर सुगठित होता है। इसका रंग भूरा होता है जिस पर उजले धब्बे पाये जाते हैं। इसमें ठोस भूरे रंग की गाये भी पाई जाती हैं। शरीर का निचला भाग प्रायः हल्के रंग का होता है। सिर उभरा हुआ और ललाट चौड़ा होता है। सींग छोटे तथा मध्यमाकार होते हैं और बाहर मुड़कर ऊपर फिर भीतर की ओर मुड़ते हैं। गलकम्बल लम्बा होता है जो लटका हुआ रहता है। पैर सीधे और लम्बे होते हैं। खुर काले या भूरे रंग के होते हैं। दुग्धसिरा मोटा होता है। यह औसतन 1526 कि॰ ग्राम (1062 – 2810 कि॰ ग्राम) दूध प्रति ब्यात देती है।

भारवाहन जाति

अमृतमहल : यह भारवाहन जाति की एक प्रमुख नस्ल है। इसका मूल स्थान कर्नाटक है। इनके बैल बहुत ही फुर्तीले होते हैं और गाड़ी पर अधिक भार ढोने में सक्षम होते हैं। यह एक मध्यम आकार की नस्ल है जिसका शरीर गठा हुआ होता है। इसका रंग प्रायः उजला से करीब काला रंग का होता है जिसपर धूसर छाया होती है। माथा उभरा हुआ होता है। इसका सींग सिर के मध्य भाग से निकलता है जो कि ऊपर से पीछे की ओर जाता है। थूथन एवं पूँछ का गुच्छा प्रायः काला होता है। अयन छोटा होता है। यह नस्ल औसतन 572 कि॰ग्राम दूध प्रति ब्यात देती है।

बछौर

यह नस्ल मुख्य रूप से बिहार के सीतामढ़ी जिले में पायी जाती है। इसके अलावे यह बिहार के मधुबनी, दरभंगा, समस्तीपुर और मुजफ्फरपुर जिलों के कुछ भागों एवं बिहार के भारत–नेपाल सीमा पर भी पायी जाती है। इस नस्ल के बैल खेती तथा भारवाहन कार्यों के लिये मशहूर हैं। इस नस्ल की विशेषता है कि ये साधारण चारा व कम पोषण पर भी अच्छी तरह जीवन निर्वाह कर सकते हैं। यह छोटे से मध्यम आकार की नस्ल है जिसका शरीर गठा हुआ होता है। इसका रंग उजला या धूसर (grey) होता है। इनकी गायें 495 – 605 कि॰ग्राम दूध प्रति ब्यात देती हैं।

बछौर बैल

डांगी

इस नस्ल का मूल स्थान महाराष्ट्र के अहमदनगर और नासिक जिले हैं। यह एक शक्तिशाली नस्ल है। इस नस्ल के बैल भारी वर्षा वाले क्षेत्रों में अपने बहुत अच्छी खेती के कार्यों के लिये मशहूर हैं। इस नस्ल की गायें कम दूध देती हैं जो कि औसतन 350 कि॰ग्राम प्रति ब्यात है। इनका रंग टूटा हुआ लाल (चित्तिदार) और उजला या काला एवं उजला होता है। इसका शरीर मध्यम श्रेणी का, त्वचा तैलीय, सिर चौड़ा, माथा उठा हुआ और चेहरा लम्बा होता है।

हैलिकर

यह एक भारवाहक नस्ल है जो कि कड़ी मिट्टी पर खेती विशेषकर दुलकी क्षमता के लिये मशहूर है। इसका मूल स्थान कर्नाटक है। यह एक मध्यम आकार की नस्ल है। इसका रंग धूसर होता है जिसमें अग्र एवं पश्च चौथाई पर गहरी छाया होती है।

अन्य देशी प्रमुख भारवाहक नस्लें निम्न हैं :–

नागोरी (Nagori), केनकथा (Kenkatha), माल्वी (Malvi), खेरीगढ़ (Kherigarh), खिलाड़ी (Khillari), बारगुर (Bargur), पोनवर (Ponwar) और गावोलाव (Gaolao)।

द्विकाजी नस्लें (Dual breeds)

हरियाणा (Haryana)

देशी गायों के द्विकाजी नस्लों में यह सबसे लोकप्रिय नस्ल है। इसके बैलों में भारवाहन क्षमता उच्चस्तरीय होती है जबकि इस नस्ल की गायें भी अच्छी मात्रा में दूध देती हैं। इसका मूल स्थान हरियाणा के रोहतक, हिसार और गुड़गाँव जिले हैं। यह नस्ल पंजाब, हरियाणा के अन्य भागों, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के कुछ भागों में भी पायी जाती है।

यह मध्यम आकार की नस्ल है। इसका शरीर सुगठित होता है। इसका रंग उजला या हल्का धूसर होता है। पैर लम्बे, पूँछ टखनों तक, अयन विकसित तथा दुग्ध शिरायें भली–भाँति विकसित होती हैं। पूँछ की छोर काली होती है।

इस नस्ल की गायें औसतन 1200 कि॰ग्राम (700 – 1800 कि॰ग्राम) दूध प्रति ब्यात देती हैं।

थारपारकर (Tharparkar)

इस द्विकाजी नस्ल का मूल स्थान पाकिस्तान का थारपारकर जिला है। भारत में यह राजस्थान के निकटतवर्ती भारत–पाक सीमा के क्षेत्रों (जोधपुर, बारमेर और जैसलनेर) में पायी जाती हैं।

इसका आकार मध्यम, रंग उजला या धूसर, ललाट चौड़ा, **गर्दन** पतली, अयन पूर्ण विकसित, दुग्ध शिरायें स्पष्ट, पूँछ की छोर काली एवं गलकम्बल विकसित और सिलवट वाली होती हैं। **नर** में कूबड अच्छी तरह से विकसित और दृढ़ होता है। इस नस्ल की गायें प्रति ब्यात औसतन 1750 कि॰ग्राम दूध देती हैं।

द्विकाजी गोपशु की अन्य प्रमुख नस्लें निम्न हैं :

कंकरेज (Kankrej), देउनी (Deoni), ओन्गोल (Ongole), कन्गयाम (Kangayam), रेड कान्धर (Red kandhar), मेवाती (Mewati), कृष्णा वैली (Krishna valley), आदि।

दुधारू विदेशी नस्लें :

1. **हाल्सटीन फ्रीजीयन (Holstein Friesian)**

इसका मूल स्थान नीदरलैंड हैं। इसका शरीर त्रिकोणाकार, भारी और बड़े आकार का होता है। इसका रंग अनियमित काला व सफेद होता है। बक्ष बड़ा, मुतान ढीला, लम्बी पूँछ, अयन विकसित और दुग्ध शिराये पूर्ण स्पष्ट होती हैं। इस नस्ल की गायें 6000–7000 कि॰ग्राम दूध प्रति ब्यात देती है। इसके दूध में वसा (3.0–3.5 प्रतिशत) होती है। इस नस्ल की प्रथम ब्यात की अवधि करीब 30 महीने होती है।

2. **ब्राउन स्वीस (Brown Swiss)**

इसका मूल स्थान स्वीटजरलैंड है। इसके शरीर का आकार काफी बड़ा होता है। इसका रंग कत्थई या भूरा होता है। त्वचा मोटी व ढीली होती है। अयन बड़ा एवं विकसित होता है। इस नस्ल की गायें औसतन करीब 5000 कि॰ग्राम दूध प्रति ब्यात देती हैं।

3. **जर्सी (Jersey)**

इसका मूल स्थान इंग्लैंड का जर्सी द्वीप है। इसका आकार छोटा होता है। इसका रंग लाल या हल्का लाल से कत्थई होता है। इसका शरीर सुगठित एवं मध्यम आकार का होता है। सिर अपेक्षाकृत हल्का होता है कमर सीधी, पुट्ठे समतल, हाल्सटीन की अपेक्षा ज्यादा गर्मी सहने की क्षमता, अयन बड़ा एवं विकसित होता है। इस नस्ल की गायें औसतन 4500 कि॰ग्राम दूध प्रति ब्यात देती हैं। इसकी दूध में वसा करीब 4.5 प्रतिशत होता है।

4. **आयरशायर (Ayreshire)**

इस नस्ल को 18वीं शताब्दी में स्काटलैण्ड में विकसित किया गया। इसका शरीर मध्यम आकार का होता है। इसका रंग लाल या कत्थई या दोनों का मिश्रण होता है। सीग बाहर और ऊपर की ओर निकले होते हैं। अयन विकसित होता है। इस नस्ल की गायें औसतन 4600 कि॰ग्राम दूध प्रति व्यात देती हैं। इसकी दूध में वसा करीब 3.5 प्रतिशत होता है।

5. **गुअरनसी (Guernsey)**

इसका मूल स्थान चैनल द्वीप में गुअरनसी है। इसका शरीर छोटा होता है। इसका रंग पीला भूरा होता है। इस नस्ल की गायें औसतन 4000 कि॰ग्राम दूध प्रति व्यात देती हैं जिसमें करीब 4.5 – 5.0 प्रतिशत वसा होता है।

भैंस की विभिन्न जातियाँ

भैंस हिन्दुस्तान के प्रायः सभी भागों में पायी जाती हैं। भारत में कुल दुग्ध उत्पादन का तकरीबन 54 प्रतिशत दूध भैंसों से ही प्राप्त होता है। भैंस की जातियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

1. रिवेराइन (Riverine) मैंस

इसमें मुख्यतः मुर्रा, नीली–रवि, जाफराबादी, मेहसाना, सूर्ती, भादावरी, पंधारपूरी, नागपूरी, टोडा, और तराई जातियाँ प्रमुख हैं।

इन भैंसो में 50 क्रोमोसोम (गुणसूत्र) होते हैं। ये डेयरी (दूध देने वाली) नस्ल हैं।

2. स्वाम्प (Swamp) मैस

ये खेत जोतने एवं मांस के उपयोग में आते हैं। ये आसाम एवं मणिपूर में पाए जाते हैं। शुद्ध स्वाम्प भैसों में 48 गुणसूत्र पाए जाते हैं।

भारतीय नस्ल के भैसों को उनके आकार, वजन एवं अन्य गुणों के आधार पर निम्न तीन प्रकार में वर्गीकृत किया जा सकता है :

बड़ा आकार – मुर्रा, बन्नी, नीली–रवि एवं जाफराबादी।

मध्यम आकार – मेहसाना, तराई, सम्बलपुरी, भदावरी एवं नागपुरी ।

छोटे आकार – सुर्ती, मंडा, कालाहांडी, जेरांगी आसामीज एवं मनीपुरी।

भैसों की प्रमुख नस्लें

मुर्रा (Murrah)

यह विश्व की सबसे अच्छी दुधारू भैंस की नस्ल है। इसका मूल स्थान हरियाणा के रोहतक, हिसार और जिन्द जिले तथा पंजाब के नाभा एवं पटियाला जिले हैं। इस नस्ल की भैंस पूरे भारत में पाई जाती है। इसका शरीर बड़ा तथा सिर और गर्दन लम्बे होते हैं। इसका रंग स्याह काला (Jet black) होता है। पूँछ लम्बी होती है और पूँछ का गुच्छा (Switch) उजला होता है। सींग छोटे, घुमावदार, पीछे की ओर मुड़े हुए होते हैं, जो ऊपर जाकर भीतर की ओर वक्र होकर सर्पिल हो जाते हैं। पीठ सीधा और कुल्हा चौड़ा होता है। थन एवं दुग्ध शिरायें पूर्ण रूप से विकसित होती हैं। वयस्क नर का वजन औसतन करीब 570 कि॰ग्राम (450–800 कि॰ग्राम) तथा वयस्क मादा का औसत वजन 520 कि॰ग्राम (350 – 700 कि॰ग्राम) होता है। इस नस्ल के भैसों की दूध देने की क्षमता प्रति व्यात 1500 से 2500 कि॰ग्राम तक होती है।

भदावरी (Bhadawari)

यह नस्ल आगरा जिले के भदावरी तहसील, उत्तर प्रदेश का ईटावा जिला और मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिलों में पायी जाती है। इसका शरीर मध्यम आकार का एवं वेज (wedge) की तरह होता है। सिर एवं पैर छोटे होते हैं। सींग लम्बे एवं चौड़े होते हैं जो पीछे की ओर जाकर उपर और भीतर की ओर मुड़ते हैं। इस नस्ल की भैंसें 800 – 1000 कि॰ग्राम दूध प्रति व्यात देती हैं। भैंसा अच्छा भारवाहक होता है और इनमें गर्मी के प्रति प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है।

इस नस्ल के वयस्क नर एवं मादा का औसत वजन क्रमशः 475 कि॰ग्राम एवं 425 कि॰ग्राम होता है।

जाफराबादी (Jaffarabadi)

इस नस्ल का मूल स्थान (प्रजनन भू–भाग) गुजरात के कच्छ एवं जामनगर जिले हैं। इसका रंग प्रायः काला होता है। सींग भारी होते हैं और गर्दन के दोनों ओर लटके हुए होते हैं, फिर ऊपर की ओर मुड़े होते हैं। थन विकसित होता है।

यह नस्ल भारतीय भैंस के नस्लों में सबसे भारी होती है। इसमें वयस्क नर एवं मादा का औसत वजन क्रमशः 1000 कि॰ग्राम एवं 700 कि॰ग्राम होता है। यह नस्ल 1000–1200 कि॰ग्राम दूध प्रति व्यात देती है। इसका भैंसा खेती एवं गाड़ी खींचने के कामों में आता है।

सूर्ती (Surti)

इसका मूल स्थान (प्रजनन स्थल) गुजरात के कैरा एवं बड़ौदा जिले हैं। इसके सींग हसुए के आकार के लम्बे और चौड़े होते हैं। इसका रंग काला या भूरा होता है। पीठ सीधा एवं पूँछ लम्बी होती है। इस नस्ल के वयस्क नर एवं मादा का औसत वजन क्रमशः करीब 500 कि॰ग्राम एवं 400 कि॰ग्राम होता है। इस नस्ल की भैंस 900 – 1300 कि॰ग्राम दूध प्रति व्यात देती है। भैंसा हल्के कामों के लिये उपयोगी होता है।

भेड़ की नस्लें (Sheep breeds)

भारत में वर्णित भेड़ों की 44 नस्ले हैं फिर भी अवर्णित नस्ल के भेड़ों की संख्या करीब 25 प्रतिशत है। शाहाबादी नस्ल एक वर्णित नस्ल है जो बिहार का है। भारतीय भेड़ की नस्लों को उनकी उपयोगिताओं के आधार पर चार भागों में वर्गीकृत किया गया है।

1. **परिधान ऊन (Apparel wool) :** इसकी प्रमुख नस्लें है:– नीलगिरी (Nilgiri), नीलगिरी सिन्थेटिक्स (Nilgiri Synthetics), हिसारडेल (Hissardale), अविवस्त्र (Avivastra), भारत मेरिनो (Bharat Merino), करनाह (Karnah), सिन्थेटिक्स (Synthetics), काश्मीर मेरीनो (Kashmir Merino) आदि।

   इसमें हिसारडेल, काश्मीर मेरिनो, नीलगिरी, अविवस्त्र, अविकालीन और भारत मेरिनो को विदेशी एवं देशी भेड़ की नस्लों के संकरण से विकसित किया गया हैं।

2. **दरी ऊन (Carpet wool) :** इसके अन्तर्गत नाली (Nali), चोकला (Chokla), सोनाडी (Sonadi), मागरा (Magra), पट्टनवाडी (Pattanwadi), तिबेतन (Tibetan), अविकालीन (Avikalin), गड्डी (Gaddi), रामपुर बुशहर (Rampur Bushair), पूंची (Poonchi), गुरेज (Gurej) आदि प्रमुख नस्ले हैं।

3. **माँस एवं दरी ऊन :** इसकी प्रमुख नस्ले हैं:– मुजफ्फरनगरी (Muzaffarnagari), जलाउनी (Jalauni), डेक्कानी (Deccani), बेलारी (Bellary), गंजाम (Ganjam), बालनगीर (Balangir), शाहाबादी (Shahabadi), छोटानागपुरी (Chhotanagpuri), कोयम्बटूर (Coimbatore), मारवारी (Marwari), जैसलमेरी (Jaisalmeri), मालपुरा (Malpura) एवं पुगल (Pugal)।

4. **माँस :** इस वर्ग के अन्तर्गत प्रमुख नस्लें– नेलोर (Nellore), मान्ड्या (Mandya), हसन (Hassan), मेचेरी (Mecheri), किलाकरसाल (Kilakarsal), भेम्बूर (Vembur), कान्गुरी (Kanguri), मद्रास रेड (Madras Red), रामनाड व्हाईट (Ramnad white), ट्रीची ब्लैक (Trichi Black) आदि हैं।

देशी भेड़ों के कुछ प्रमुख नस्लों की विशेषतायें निम्न है:–

परिधान ऊन

नीलगिरी (Nilgiri) :

इसे परिधान ऊन के अर्न्तगत वर्गीकृत किया गया है। यह देशी कोयम्बटूर नस्ल एवं विदेशी टास्मानीयन मेरीनो, चेभीऔट और साउथ डाउन के संकरण से विकसित हुआ है। यह मध्यम आकार की नस्ल है जिसका रंग उजला एवं चेहरे एवं शरीर पर कभी कभी भूरे धब्बे होते हैं। कान चौड़े होते हैं। नर में सींग की कली होती है, मादा में सींग नहीं होता। पूँछ मध्यम एवं पतली होती है।

दरी

चोकला (Chokla)

इसका मूल स्थान राजस्थान के चुरू, झुनझुनु, बीकानेर, जयपुर एवं नागौर जिले हैं। यह हल्के से मध्यम आकार की नस्ल है। इसके चेहरे पर ऊन नहीं होता है। इसका रंग लाल भूरा होता है। कान छोटे एवं मध्यम आकार के होते हैं। नर एवं मादा दोनों में ही सींग नहीं होते । पूँछ पतली और मध्यम आकार की होती है।

नाली (Nali)

इसका मूल स्थान राजस्थान के गंगानगर तथा झुनझुनु जिले तथा हरियाणा के दक्षिणी हिसार और रोहतक जिले हैं। यह मध्यम आकार की भेंड़ है। इसका चेहरा हल्का भूरा होता है। नर एवं मादा दोनों को सींग नहीं होते हैं। इसके कान बडे तथा पत्तेदार होते हैं। पँछ छोटी से मध्यम आकार तथा पतली होती है। ऊन उजला, मोटा तथा घना होता है। इसके ललाट, पेट तथा पैर ऊन से ढके रहते हैं।

भेड़ का शाहाबादी नस्ल

माँस और दरी ऊन

शाहाबादी (Shahabadi)

यह बिहार के बक्सर, भोजपुर, पटना, रोहतास, भभुआ, औरंगाबाद, गया और जहानाबाद जिलों में पायी जाती है। यह नस्ल मध्यम आकार की और लेगी (leggy) होती है। ऊन का रंग प्रायः भूरा होता है पर कभी–कभी उस पर काले धब्बे होते हैं। कान मध्यम आकार के और लटके हुये होते हैं। पूँछ काफी लम्बी और पतली होती है। नर तथा मादा दोनों को सींग नहीं होते। ऊन अत्यन्त मोटा होता है।

मालपुरा (Malpura)

भेंड़ की यह नस्ल राजस्थान के जयपुर, टोंक, सवाईमाधोपुर, अजमेर, भीलवाड़ा और बूंदी जिलों में पायी जाती है। इनका शरीर सुगठित होता है। चेहरा हल्का भूरा होता है। कान छोटे और नलिकाकार होते हैं। नर एवं मादा दोनों को सींग नहीं होते हैं। पूँछ मध्यम आकार की लम्बी तथा पतली होती है। ऊन उजला, काफी मोटा और बालों वाला होता है। पेट और पैर पर ऊन नहीं होते।

मुजफ्फरनगरी (Muzaffarnagari)

इसका मूल स्थान उत्तर प्रदेश का मुजफ्फरनगर जिला है। मुख्य रूप से यह माँस के लिये पाला जाता है लेकिन यह मोटा कालीन ऊन भी प्रदान करता है। यह नस्ल मध्यम से बड़े आकार की सुगठित शरीर वाली होती है। इसका रंग उजला होता है पर कभी–कभी भूरे या काले धब्बे देखे जा सकते हैं। नर एवं मादा दोनों को सींग नहीं होते। नर में कभी कभी अल्पविकसित सींग देखे जा सकते हैं। कान लम्बे तथा गिरे हुये होते हैं। पूँछ काफी लम्बी होती है। ऊन उजला तथा मोटा तथा खुला हुआ होता है। पेट और पैर पर ऊन नहीं होते हैं।

गंजाम (Ganjam)

गंजाम नस्ल की भेड़ उड़ीसा के गंजाम, गजपति, रायगड़ा और कोरापत जिले तथा फूलबनी, नयागढ़ और खुर्दा जिले के कुछ भागों में पायी जाती है। इसका रंग भूरा से गहरा टैन (Tan) होता है। कुछ जानवरों के शरीर और चेहरे पर उजले धब्बे पाये जाते हैं। सिर मध्यम आकार का होता हैं और उसपर कोई ऊन नहीं होता। नर को सींग होता है पर मादा को नहीं होता । थन छोटे और गोल होते हैं और उसमें छोटे – छोटे छीमी पीछे की ओर अवस्थित होते हैं। ऊन छोटा तथा बालनुमा (hairy) होता है।

माँस वर्ग

नेल्लोर :

यह आंध्रप्रदेश के नेल्लोर और समुद्र तटीय जिलों में पायी जाती है। यह भेड़ की वैसी नस्ल है जिसपर प्रायः ऊन नहीं होता और दूर से यह बकरी की तरह लगती है। रंग के आधार पर इसके तीन प्रकार होते हैं:– पल्ला – जो या तो पूरा उजला होता है या उजला जिसके सिर, गर्दन, पीठ और पैर पर हल्के भूरे धब्बे होते हैं। जोदीपी – यह उजला होता है और इस पर काले धब्बे होते हैं। डोरा– यह पूर्णतः भूरा होता है। कान लम्बे और गिरे हुये होते हैं। पैर लम्बे और पतले होते हैं। पूँछ छोटी और पतली होती है।

मांड्या (Mandya)

भेंड़ की यह नस्ल माँस के लिये बहुत ही अच्छी मानी जाती है। इसका मूल स्थान कर्नाटक का मांड्या जिला है। इसका मुख्य रंग धूसर उजला है। ललाट चौड़ा तथा हल्का रोमन नाक होता है। प्रायः नर एवं मादा दोनों को सींग नहीं होते लेकिन कभी कभी नर में सींग पाया जाता है। वयस्क नर एवं मादा के शरीर का औसत वजन क्रमशः करीब 37 कि॰ग्राम और 27 कि॰ग्राम होता है।

यह मध्यम आकार की नस्ल है जिसका रंग हल्के टैन (Tan) से गहरा भूरा होता है। यह तमिलनाडु के चेन्नई और उसके समीपवर्ती जिलों में पायी जाती है यह मॉस के लिये बहुत ही अच्छी नस्ल है।

यह मध्यम आकार की नस्ल है जिसका शरीर सुगठित होता है। यह लाल–भूरा होता है। नर में मजबूत मुड़े हुये सींग होते हैं जबकि मादा को सींग नहीं होते पूँछ छोटी और पतली होती हैं। वयस्क नर एवं मादा का औसत वजन क्रमशः 35 कि॰ग्राम और 25 कि॰ग्राम होता है।

मेड़ों की प्रमुख विदेशी नस्लें : उत्तम गुणों वाली ऊन की नस्लें

मेरीनो (Merino)

इसका मूल स्थान स्पेन है। भारत में संकरण के लिये सोवियत मेरीनो को आयात किया गया। यह उत्तम किस्म की ऊन देने वाली नस्ल है। इसका चेहरा और पैर उजले होते हैं। नर को भारी और घुमावदार सींग होता है। मादा को सींग नहीं होता है। वयस्क नर तथा मादा भेड़ का औसत वजन क्रमशः 75 कि॰ग्राम तथा 65 कि॰ग्राम होता है जबकि इनकी ऊँचाई क्रमशः 70 से॰मी॰ और 60 से॰मी॰ होती है। नर औसतन 4–5 कि॰ग्राम और मादा 3–4 कि॰ग्राम ऊन देते हैं।

रेम्बुलेट (Rambouillet)

इस नस्ल को फ्रांस में विकसित किया गया है। यह मॉस और उत्तम गुण वाला ऊन प्रदान करती है। नर को बड़ा घुमावदार सींग होता है या उन्हें सींग नहीं भी हो सकता है। मादा को सींग नहीं होता। चेहरा और पैर उजले होते हैं। वयस्क नर एवं मादा का वजन क्रमशः 100–125 कि॰ग्राम तथा 60–90 कि॰ग्राम होता हैं।

माँस वाली नस्लें :

सफ्फोल्क (Suffolk)

इसे इंग्लैंड में विकसित किया गया है। काला चेहरा, कान और पैर इसकी विशेषतायें हैं। वयस्क नर एवं मादा का वजन क्रमशः 100–135 कि॰ग्राम एवं 70–100 कि॰ग्राम होता है।

डोरसेट (Dorset)

इसका मूल स्थान दक्षिणी इंग्लैण्ड है। वयस्क नर एवं मादा का वजन क्रमशः 80–110 कि॰ग्राम एवं 50–80 कि॰ग्राम होता है।

साउथडाउन (Southdown)

इसका मूल स्थान इंग्लैण्ड है। वयस्क नर एवं मादा का वजन क्रमशः 80–100 कि॰ग्राम एवं 55–70 कि॰ग्राम होता है।

द्विकाजी नस्ल

कोरीडेल (Corriedale)

इसका मूल स्थान न्यूजीलैण्ड है। यह माँस और ऊन दोनों प्रदान करती है। वयस्क नर एवं मादा का वजन क्रमशः 80–110 कि॰ग्राम एवं 55–85 कि॰ग्राम होता है। यह नस्ल औसतन 4.5–5.5 कि॰ग्राम ऊन प्रति वर्ष पैदा करती है।

बकरियों की देशी एवं विदेशी नस्लें

उपयोगिता के आधार पर बकरियों की देशी नस्लों की निम्न 5 भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. मांस और चमड़ा
2. मांस, दूध और चमड़ा
3. मांस, बाल और चमड़ा
4. मांस, पशमीना और चमड़ा
5. दूध, मांस और चमड़ा

प्रमुख देशी नस्लें

1. **मांस और चमड़ा** :इसके अन्तर्गत प्रमुख नस्लें ब्लैक बंगाल, गंजाम और कन्नैयाडू (Kannaiadu) हैं।

ब्लैक बंगाल (Black Bengal)

यह देशी बकरियों में सबसे ज्यादा बच्चा देने वाली नस्ल है। इस नस्ल का मुख्य स्थान पश्चिम बंगाल का मिदनापुर जिला है। यह नस्ल भारत के पूर्वी, उत्तर पूर्वीय राज्यों जैसे बिहार, उड़ीसा, आसाम, मणिपुर, त्रिपूरा, अरूणाचल प्रदेश और मेघालय में पायी जाती है। इसका प्रमुख रंग काला है। इसके अन्य रंग भूरे, कत्थई एवं उजले होते हैं जिसपर कभी कभी पीठ, पेट एवं पैर पर काले निशान भी पाए जाते हैं। इसका सिर छोटा होता है। कान छोटे और चौड़े होते हैं। दोनों लिंगों में दाढ़ी होती है। पैर छोटा एवं मजबूत होता है। थन मध्यम आकार का और गोल होता है। वयस्क नर एवं मादा बकरी का औसत वजन क्रमशः करीब 32 कि॰ग्राम और 20 कि॰ग्राम होता है।

गंजाम (Ganjam)

यह उच्चस्तरीय मांस के गुणों वाली बकरी की एक सुन्दर किस्म है। इसका मूल स्थान उड़ीसा का गंजाम जिला है। ये गंजाम जिले के निकटवर्ती जिलों जैसे खुर्दा, नयागढ और गजपति जिलों में पाए जाते हैं। इसको पालने में मुख्य रूप से गोला समुदाय के लोग होते हैं।

इस नस्ल की बकरियाँ मध्यम आकार की और लम्बे पैरो वाली होती हैं। इसका रंग आमतौर पर काला और भूरा होता है। फिर भी उजले, भूरे और काले रंगो के मिश्रण वाली बकरियां भी पाई जाती हैं। सिर छोटा होता है। नर और मादा दोनों में लम्बे सींग होते हैं। नाक की लकीर हल्की उत्तल होती है जिससे की यह रोमन प्रकार की दिखती है। वयस्क नर एवं मादा बकरियों का वजन क्रमशः करीब 44 कि॰ग्राम एवं 31 कि॰ग्राम होता है।

2. **मांस, दूध और चमड़ा** :इस श्रेणी की बकरियों की मुख्य नस्लें बारबरी (Barbari), झकराना (Jhakrana), मालाबारी (Malabari), ओस्मानावादी (Osmanabadi), सिरोही (Sirohi), जालावादी (Zalawadi) आदि हैं।

बारबरी (Barbari)

यह मांस, दूध और चमड़ा की एक अच्छी नस्ल है। इसका मूल स्थान उत्तर प्रदेश के उत्तरी एवं केन्द्रीय भागों में है। यह उत्तर प्रदेश के इटावा, आगरा, हाथरस, मथुरा एवं अलीगढ़ जिलों तथा राजस्थान के भरतपुर जिले में पायी जाती है। यह छोटे आकार की और सुगठित शरीर वाली नस्ल होती है। इसका रंग मुख्यतः उजला होता है जिसपर भूरे रंग के धब्बे होते हैं। सिर छोटा होता है। नर और मादा दोनों में मध्यम आकार के सींग होते हैं, जो घुमावदार और ऊपर से पीछे की ओर मुड़े हुए होते हैं। ललाट सीधा होता है और नाक रोमन होती है। पैर मध्यम लंबाई के और मोटे होते हैं। वयस्क नर एवं मादा का औसत वजन कमशः 38 कि॰ग्राम एवं 23 कि॰ग्राम होता है।

झखराना (Jhakhrana)

इस नस्ल का मूल स्थान राजस्थान के अलवर जिले का जखराना गाँव है। यह बड़े आकार की सुगठित शरीर वाली नस्ल है। इसका रंग सामान्य रूप से काला होता है परन्तु कान उजला होता है। सिर उन्नत होता है इसके कान लम्बे, उजले, पत्ते की तरह लटके रहते हैं। नर एवं मादा बकरियों का औसत वजन क्रमशः 58 कि॰ग्राम और 45 कि॰ग्राम होता है।

3. **मांस, बाल और चमड़ा**

गद्दी

यह लम्बे बालों वाली नस्ल है। यह पूरे हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर के जम्मू क्षेत्र तथा उत्तराखंड के गढ़वाल पहाड़ियों में पायी जाती है। यह मध्यम आकार की सुगठित शरीर वाली नस्ल है। इसका मुख्य रंग उजला होता है लेकिन काला और भूरा और इन दोनों के मिश्रण वाले रंग भी देखे जा सकते हैं। सिर छोटा तथा चेहरा पतला होता है। नर और मादा दोनों में बड़े सींग होते हैं जो ऊपर से पीछे की ओर मुड़े हुए होते हैं। कान मध्यम आकार के और लटके हुए होते हैं। पूँछ छोटी होती है जिसपर वालों का गुच्छा होता है। पूरा शरीर लम्बे और मोटे वालों से ढका होता है। वयस्क नर एवं मादा बकरियों का औसत वजन कमशः 27 कि॰ग्राम और 25 कि॰ग्राम होता है।

मारवाड़ी (Marwari)

इस नस्ल की बकरियाँ राजस्थान के थार मरुभूमि और उसके निकटवर्ती इलाकों में पाई जाती हैं। ये राजस्थान के 7 जिलों जैसे बारमेर, बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, जलोर, नागौर और पाली जिलों में पाई जाती हैं। इसका आकार मध्यम और शरीर सुगठित होता है। इस नस्ल की बकरियाँ समान रूप से काली होती हैं। ललाट उत्तल होता है जिसपर बालों का गुच्छा होता है। नर एवं मादा दोनों में भूरे–काले सींग होते हैं। दोनों लिंगों में दाढ़ी होती है। पूँछ छोटी होती है और ऊपर की ओर मुड़ी होती है। गर्दन और चेहरे को छोड़कर नर ओर मादा दोनो के शरीर लम्बे एवं चमकते बालों से ढके होते हैं। वयस्क नर एवं मादा का औसत वजन क्रमशः 40 कि॰ग्राम एवं 33 कि॰ग्राम होता है।

इसके अलावे मांस, बाल और चमड़े की श्रेणी में आने वाले प्रमुख नस्लें निम्न है:

बखरवाल (Bakharwal), गोहिलवाडी (Gohilwadi), कंगन (Kangan), कच्छी (Kutchi), खासी (Khasi),संगमनेरी (Sangamneri) आदि।

4. मांस, पशमीना और चमड़ा

चांगथंगी (Changthangi) :

यह पशमीना नस्ल है। इसका मूल स्थान लद्दाख का चांगथांगी क्षेत्र है। यह मुख्य रूप से लेह जिले के न्योमा, नुब्रा और दरबोक प्रखंडों में पायी जाती है। यह मध्यम आकार की सुगठित शरीर वाली बकरी है। इसका रंग मुख्य रूप से उजला है। सिर छोटा होता है। नर एवं मादा में बड़े सींग होते हैं जो प्रायः बाहर से ऊपर की ओर जाकर भीतर की ओर मुड़कर अर्द्धवृत्ताकार का रूप देते हैं। कान मध्यम आकार के तथा लटके हुए होते हैं। वयस्क नर एवं मादा दोनों के वजन करीब 20 कि॰ग्राम होते हैं। इससे पशमीना प्राप्त होता है जिसका उपयोग महीन कपड़ों के बनाने में होता है। इस नस्ल से प्रति वर्ष प्रति बकरी करीब 200 ग्राम पशमीना पैदा होता है जिसकी गुणवत्ता दूसरे देश के पशमीना से अच्छी होती है।

चेगू (Chegu) :

बकरी की यह नस्ल पशमीना, सूक्ष्मत्तम स्वाभाविक तंतु (finest natural fibre), पैदा करती है। यह हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड के अधिक ऊँचाई वाले पहाड़ों में पायी जाती है। यह हिमाचल प्रदेश के लोहौल और स्पीती घाटी में तथा उत्तराखंड के उत्तरकाशी, चमौली और पिठौरागढ़ जिलों में पायी जाती है। यह 3000 से 5000 मीटर की ऊँचाइयों पर पायी जाती है। इसका आकार मध्यम होता है लेकिन यह चांगथांगी नस्ल से भारी होता है। इसका रंग प्रायः उजला होता है जिसमें भूरे लाल रंग का मिश्रण होता है। सिर छोटा होता है, नर और मादा दोनों में चौड़े सींग होते हैं जो ऊपर से पीछे की ओर जाकर बाहर मुड़े होते हैं। वयस्क नर एवं मादा का औसत वजन क्रमशः 39 कि॰ग्राम और 26 कि॰ग्राम होता है।

5. दूध, मांस और चमड़ा

बीटल (Beetal) :

यह दूध देने वाली भारी शरीर की नस्ल है जो पूरे पंजाब और हरियाणा में पायी जाती है। फिर भी इसकी शुद्ध नस्ल पंजाब के गुरूदासपुर, अमृतसर और फिरोजपुर जिलों में पायी जाती है। इस नस्ल की बकरियाँ मुख्य रूप से काली होती हैं। इसके अलावे इन्हें भूरे रंग में सफेद धब्बों के साथ भी देखा जा सकता है। इसका सिर छोटा होता है। दोनों लिंगों में सींग पाये जाते हैं जो कि घुमावदार होते हैं। फिर भी दोनों लिंगों में बिना सींग की बकरियाँ भी देखी जा सकती हैं। पूँछ छोटी और पतली होती है एवं थन पूर्ण विकसित होता है जिसमें लम्बी छिमियाँ होती हैं। इस नस्ल की बकरियाँ प्रति दिन 1.5 कि॰ग्राम से 2.0 कि॰ग्राम तक दूध देती हैं। वयस्क नर एवं मादा बकरियों का औसत वजन क्रमशः 59 कि॰ग्राम और 35 कि॰ग्राम होता है।

जमुनापारी (Jamunapari) :

दक्षिण–पूर्व एशिया की यह सबसे अच्छी दूध देने वाली नस्ल है। इस नस्ल की बकरियां सबसे लम्बी होती हैं। यह नस्ल उत्तर प्रदेश के आगरा, मथुरा एवं इटावा जिलों में पायी जाती है। फिर भी शुद्ध नस्ल की बकरियां इटावा जिले के बाटपूरा और चक्रनगर प्रखंडों के 80 गाँवों में यमुना और चंबल नदियों के बीच पायी जाती हैं। इसका शरीर लम्बा तथा सुगठित होता है। इसका मुख्य रंग उजला होता है। नर एवं मादा दोनों में लम्बे चौड़े और मुड़े हुए सींग होते हैं जो पीछे की ओर जाते हैं। बकरों के सींग बकरियों से लम्बे होते हैं। इसमें रोमन नाक होता है जिसपर बालो का गुच्छा होता है जिससे यह तोते के मुख की तरह

दिखाई पड़ती है। कान लम्बे एवं लटके हुए, नली के आकार के होते हैं जिसमें नली सामने की ओर खुलती है। इस नस्ल की बकरियाँ प्रतिदिन औसतन 1.75 कि.ग्राम से 2.25 कि.ग्राम तक दूध देती हैं। फिर भी प्रतिदिन 4 कि. ग्राम दूध देने वाली बकरियाँ भी देखी गई हैं। वयस्क बकरी एवं बकरों की औसत लम्बाई क्रमश 75 से. मी. और 77 से. मी. होती है। वयस्क बकरे एवं बकरियों का औसत वजन क्रमशः 75 कि.ग्रा. एवं 55 कि.ग्रा. होता है।

बकरियों की विदेशी नस्लें :

विदेशी नस्ल की प्रमुख बकरियाँ निम्न है:--

1. सानन (Saanen) : इसका मूल स्थान स्वीट्जरलैंड है। यह दूध देने वाली नस्ल की बकरी है जो करीब प्रति व्यात 100 कि.ग्राम तक दूध देती है।
2. अल्पाईन (Alpine) : यह भी दूध देने वाली नस्ल है। यह फ्रांस और स्वीट्जरलैंड में पायी जाती है।
3. एंग्लोनुवियन (Anglonubian) : यह दूध देने वाली विदेशी नस्ल है जो मुख्य रूप से ग्रेट ब्रिटेन में पायी जाती है।
4. टोगेनवर्ग (Toggenburg) : यह दूध देने वाली विदेशी नस्ल हे जो स्वीटजरलैंड, ग्रेट ब्रिटेन और नीदरलैंड में पाई जाती है।
5. अंगोरा (Angora) : इसका मूल स्थान टर्की है। यह विदेशी नस्ल मोहेर (Mohair) पैदा करती है।

कुक्कुटों (मुर्गा–मुर्गी) के देशी नस्लें

कुक्कुटों के प्रमुख देशी नस्लें निम्न है–

1. असील (Ascel):

यह आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में पायी जाती है। यह झगड़ालूपन, फुर्तीलापन, चलने का ढंग और लड़ाकू स्वभाव के लिए मशहूर है। इसे खेल पक्षी के नाम से भी जाना जाता है। मुर्गी के देशी नस्लों में इसका आकार सबसे बड़ा होता है। यद्यपि ये अंडा कम देती हैं लेकिन इसमें मांस के गुण पाए जाते हैं। इसमें मटरकलगी होती है जो छोटी होती है लेकिन सिर पर दृढतापूर्वक अवस्थित है। पूँछ छोटी तथा गिरी हुई होती है। पैर मजबूत तथा सीधे होते हैं। मुर्गे का वजन 4–5 कि.ग्राम तथा मुर्गियों का वजन 3–4 कि.ग्राम होता है।

2. चित्तागोंग (Chittagong):

यह पूर्वी क्षेत्रों में पाया जाता है। यह द्विकाजी पक्षी है। इसे मलय भी कहते हैं। यह एक बडे आकार का पक्षी है जिसमें वयस्क पक्षी बहुत ही मजबूत तथा झगड़ालू स्वभाव के होते हैं। इसमें छोटा मटरकलगी होता है। इसकी छाती चौड़ी, गहरी और मांसल होती है। पैर पीले तथा पंख कम होते हैं। मातृत्व क्षमता कम होती है।

3. कडकनाथ (Kadaknath) :

इसे कालामासी भी कहा जाता है। यह पक्षी मध्य प्रदेश के झबुआ एवं धार जिलों में आदिवासियों द्वारा पाला जाता है। इसके अंडे हल्के भूरे होते हैं। कलगी और वाटल्स (wattles) बैंगनी (purple) रंग के होते हैं। इसका मांस काला लेकिन स्वादिष्ट होता है। अपने प्राकृतिक आवास में ये पक्षी रोग प्रतिरोधक होते हैं। मुर्गे का वजन औसतन 1.5 कि.ग्राम और मुर्गी का वजन 1.0 कि.ग्राम होता है।

4. बसरा (Busra) :

यह छोटे से मध्यम आकार का होता है और गुजरात तथा महाराष्ट्र के कुछ भागों में पाया जाता है। इसके शरीर गहरे एवं पंख हल्के होते हैं। इसकी मुर्गी कम अण्डा देती है।

विदेशी नस्लें –

विदेशी नस्ल की मुर्गियों को निम्न रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. **अमेरिकन नस्ल :** इस नस्ल का चमड़ा पीला, सैंक (shank) पंखहीन एवं कान के फूले हुए भाग (earlobe) लाल होते हैं। अंडे का रंग भूरा होता है (लमना) (Lamana) नस्ल को छोड़कर)। अमेरिकन वर्ग की प्रमुख नस्लें निम्न हैं:

(1) प्लाइमाउथ रॉक (Plymouth Rock)

(2) रोड आइलैंड रेड (Rhode Island Red)

(3) न्यू हैम्पशायर (New Hampshire)

अंग्रेजी वर्ग (English class) : कार्निस नस्ल छोड़कर इस वर्ग के मुर्गियों के चमड़े उजले तथा कान के फूले हुए भाग (Ear lobe) लाल होते हैं। डोरकिंग (Dorking) और रेड कैप (Red cap) को छोड़कर इस वर्ग के सभी मुर्गियों के अण्डे भूरे कवच के होते हैं। इस वर्ग की प्रमुख नस्लें कोर्नीश (Cornish), आस्ट्रालोर्प (Australorp), डोर्किंग (Dorking) आदि हैं।

मेडिटरेनियन वर्ग (Mediterranean class) : इसका शरीर हल्का होता है। इन्हें अधिक अण्डा पैदा करने के लिए विकसित किया गया है। इस वर्ग की मुख्य नस्लें हैं: लेगहार्न (Leghorn), माइर्नोका (Minorca) एवं एंकोना (Ancona)। लेगहोर्न प्रति वर्ष करीब 280–300 अण्डा देती है।

ऐसियाटिक वर्ग (Asiatic class) : इस वर्ग के पक्षी के शैंक (shank) पंखयुक्त होते हैं।कान का फूला हुआ भाग (Earlobe) लाल होता है। इनका चमड़ा पीला (ब्लैक लैंगशान को छोड़कर) होता है। इनमें परिपक्वता धीमी होती है। यह कम अण्डा देने वाली और लगातार अण्डा देने वाली नस्ल हैं। इसकी मुख्य नस्लें हैं ब्रह्मा (Brahma), कोचीन (Cochin) एवं लैंगशान (Langshan)।

हमने सीखा

- भारत में गोपशु, भैंस, बकरी एवं कुक्कुटों (मुर्गा–मुर्गी) के बहुत तरह की नस्लें पायी जाती हैं।
- उपयोगिता के आधार पर गोपशु को दुधारू, भारवाहन और द्विकाजी जातियों में बाँटा जा सकता है।
- देशी गायों में साहीवाल सबसे अधिक दूध देने वाली नस्ल है।
- विदेशी नस्लों में हाल्सटन फ्रीजीयन एवं जर्सी अधिक दूध देने वाली नस्लें हैं जिनसे देशी गायों/बाछी का संकरण कराया जाता है।
- बछौर बिहार का भारवाहन जाति का गोपशु है।
- भारत में भैंसों में मुर्रा नस्ल सबसे अधिक दूध देती है।
- भारत में भेड़ की 44 नस्लें पायी जाती हैं जिसमें शाहाबादी नस्ल बिहार में पायी जाती है।
- ब्लैक बंगाल बकरी की एक देशी नस्ल है जो एकबार में सबसे ज्यादा बच्चा देती है।
- व्हाइट लेगहार्न, कुक्कुटों की एक विदेशी नस्ल है जो सबसे ज्यादा अंडा देती है।

अभ्यास

1. प्रश्नावली

(क) देशी दुधारू गाय की चार नस्लों के नाम लिखें एवं किसी एक के बारे में संक्षिप्त वर्णन करें।

(ख) मुर्रा भैंस के बारे में संक्षिप्त वर्णन करें।

(ग) देशी बकरी की पाँच नस्लों का नाम लिखें। एक ऐसी देशी नस्ल जो पशमीना पैदा करती है, के बारे में संक्षिप्त विवरण दें।

2. सही विकल्प के आगे (√) का निशान लगाइए :

(क) बछौर नस्ल का मूल स्थान भारत के किस राज्य में हैं ? (बिहार, उड़ीसा, केरल)

(ख) यह देशी गोपशु का भारवाहन जाति है। (अमृतमहल, साहीवाल, गिर)

(ग) यह गोपशु का उधिक दूध देने वाली विदेशी नस्ल है। (साहीवाल, गिर, हाल्सटीन फ्रीजीयन)

(घ) यह भैंस की सबसे अच्छी दुधारू नस्ल है। (मुर्रा, नागपुरी, भदावरी)

(ड.) भेड़ के किस नस्ल का मूल स्थान बिहार राज्य है ? (मुजफ्फरनगरी, शाहाबादी, गंजाम)

(च) देशी बकरी की कौन सी नस्ल एक बार में सबसे ज्यादा बच्चा देती है ? (जमुनापारी, झखराना, ब्लैक बंगाल)

(छ) यह एक देशी बकरी की नस्ल है। (चोकला, नाली, बारबरी)

(ज) किस देशी मुर्गी की नस्ल का माँस काला होता है ? (असील, कडकनाथ, बसरा)

3. निम्न पर (√) या (X) का निशान लगाइए।

(क) हरियाणा गोपशु की द्विकाजी नस्ल है। ( )

(ख) सूर्ती भेड़ का दरी ऊन की नस्ल है। ( )

(ग) चेंगू बकरी का पशमीना पैदा करने वाली नस्ल है। ( )

(घ) रेड सिन्धी दुधारू जाति का गोपशु है। ( )

(ड.) नाली बकरी की विदेशी नस्ल है। ( )

(च) जमुनापारी बकरियों में सबसे लम्बी नस्ल है। ( )

(छ) असील देशी नस्ल का कुक्कुट है जो लड़ाकू स्वभाव के लिये मशहूर है। ( )

(ज) हैलिकर गोपशु का भारवाहक जाति है। ( )

परियोजना कार्य

1. पड़ोस/गाँव में हाल्सटन फ्रीजीयन संकरण गाय का पता लगायें और उसका चित्र बनावें।
2. पड़ोस/गाँव में मुर्रा भैंस का पता लगावें और उसका चित्रांकन करें।

*****

6.4. पशुओं एवं कुक्कुटों की आवासीय प्रणाली

पशुओं से अधिकतम उत्पादन लेने के लिए उत्तम पशुशाला का प्रबंध अति आवश्यक है। पशुशाला का मुख्य उद्देश्य है पशुओं के लिए सही ताप और आद्रता का होना। सभी तरह के पशुओं के लिए एक ऐसे वातावरणीय तापमान की आवश्यकता होती है जिसमें उसे सबसे ज्यादा आराम मिलता है और उसमें उसे शारीरिक ताप को स्थिर रखने के लिए कोई भी ज्यादा ऊर्जा व्यय नहीं करनी पड़ती है, इसलिए उसमें उत्पादकता भी सर्वोत्तम होती है। इसे उस पशु समूह का 'आरामदायक ताप श्रेणी' या 'कम्फर्ट जोन' कहा जाता है। पशुशाला इस कम्फर्ट जोन को बनाये रखने में मददगार होती है।

पशुशाला का मुख्य उद्देश्य निम्नांकित हैं –

(क) विपरीत मौसम से पशुओं की सुरक्षा।

(ख) नियमित आहार एवं खाने–पीने की उचित व्यवस्था।

(ग) पशुओं का जंगली जानवरों से बचाव।

(घ) श्रमिकों की बचत।

(ङ) किसी विशेष उद्देश्यों हेतु पशुशाला का उपयोग जैसे बच्चा जनना आदि।

(च) पशुओं से अधिकत्तम उत्पादन।

पशुशाला के निर्माण के लिए चाहे हम जो भी बनावट या प्लान तैयार करें उनमें पशुओं का आराम, उनका स्वास्थ्य और साथ ही श्रमिक का सही उपयोग सर्वोपरि होना चाहिए। इसीलिए पशुशाला के निर्माण के समय कुछ महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखना जरूरी है।

(क) सभी वर्ग के पशुओं के लिए पूरी जगह।

(ख) फर्श फिसलन रहित एवं उत्तम जल व मल निकासी की व्यवस्था।

(ग) पशुशाला में प्राकृतिक प्रकाश का उचित प्रवेश।

(घ) पर्याप्त खाने व पीने की जगह।

(ङ) पर्याप्त ताप, आर्द्रता एवं गर्म वायु निकास (Ventilation) की व्यवस्था ।

इन सारी बातों को ध्यान में रखते हुए हमें पशुशाला के स्थान का चयन करना चाहिए। साथ ही कुछ और बातों का ध्यान रखना जरूरी है जो निम्नांकित है।

(क) पशुशाला के निर्माण के लिए स्थान ऊँचा, भूमि कठोर तथा नमी रहित होना चाहिए। भविष्य में विस्तार का भी ध्यान रखना चाहिए।

(ख) जहाँ तक सम्भव हो भवनों का मुख्य द्वारा पूरब की ओर होना चाहिए। पशुशाला की स्थापना इस प्रकार से हो जिसमें उत्तर की ओर से अधिकाधिक धूप आ सके। साथ ही लू एवं सर्दी के झोंको से बचाव हो सके।

(ग) पशुशाला के चारों ओर पेड़ लगवाने चाहिए जो वायु–रोधक का भी काम करे।

(घ) पशुशाला मुख्य राजमार्ग से दूर हो और वर्ष भर सड़क से जुड़ा हो।

(ङ) पशुशाला में उचित स्थान पर खिड़की एवं रोशनदानों की उचित व्यवस्था जरूरी है।

(च) पानी एवं बिजली की व्यवस्था हमेशा मौजूद होनी चाहिए।

भारतवर्ष में गाय एवं भैंसों के लिए मुख्यतः दो प्रकार की गृह–व्यवस्था अपनाई जाती है।

1. पशुओं को बाँध कर रखने की प्रणाली (Conventional barn system)

2. पशुओं को खुला रखने की प्रणाली (Loose house system)

पशुओं की गृह–व्यवस्था प्रणाली का चयन, पशुओं के पालने के स्थान के भौगोलिक, आर्थिक, वातावरणीय और कुछ अन्य कारणों को ध्यान में रखकर किया जाता है। फिर भी कुछ सामयिक बदलाव लाकर लूज हाउस प्रणाली को हम पूरे देश में अपना सकते हैं। हाल ही में भारतीय उष्णकटिबंधीय जलवायु के लिए लूज हाउस प्रणाली को ही उपयुक्त मानी गई है।

1. पशुओं को बाँध कर रखने की प्रणाली (Conventional barn system)

इस व्यवस्था में पशुओं को बांध कर रखा जाता है। उन्हें उसी स्थान पर ही खिलाना, पिलाना, दूध निकालना आदि किया जाता है। इस प्रणाली में पशुशाला पूर्णतः छतयुक्त होता है और दीवार भी पूरे होते हैं जिनमें उपयुक्त स्थान पर खिड़कियाँ एवं रोशनदान होते हैं। इस व्यवस्था में हलाँकि खर्च ज्यादा होते हैं लेकिन इसमें पशुओं को बेहतर नियंत्रित किया जा सकता है। साथ ही इसमें कम जगह में ही ज्यादा पशुओं को रखा जा सकता है एवं पशुओं को ज्यादा स्वच्छ, रोगमुक्त रखा जा सकता है। इस प्रणाली को शीतोष्ण हिमालय क्षेत्र जहाँ जाड़ा लंबे समय तक और गंभीर (Severe) होता हैं वहाँ भी अच्छी तरह बनाया जा सकता है। इस प्रणाली में पशुशाला दो प्रकार से बनाई जाती है।

(क) एक पंक्तिवाली पशुशाला : इनमें 15–20 पशु आसानी से रखे जा सकते हैं। पशुओं की संख्या अधिक होने पर दोहरी पंक्तिवाले पशुशाला का निर्माण कराया जाता है। एक पंक्तिवाले पशुशाला की चौड़ाई 5.5 –6.0 मीटर होती है। इसमें चारा डालने के लिए दीवार के साथ 1.2 मीटर का रास्ता छोड़ा जाता है। इस रास्ते के बाद खाने की नाद तथा फिर पशुओं के खड़े होने का स्थान होता है। जिसकी चौड़ाई क्रमशः 0.75 मीटर एवं 1.67 मीटर होती है और अन्त में पेशाब की नाली और आने–जाने का रास्ता होता है। यह नाली U आकार का होता है यह .35 से0मी0 एवं रास्ता 1.2 –1.3 मीटर चौड़ा होता है।

(ख) दोहरी पंक्तिवाली पशुशाला : इनमें पशुओं को दो लाईन में बाँधा जाता है। समान्यतः 80–100 पशुओं को इस प्रणाली में रखा जा सकता है। दोहरी पंक्तिवाली पशुशाला में पशुओं को दो विधियों से रखा जा सकता है।

1. मुँह से मँह वाली विधि (Face to face system)

इस विधि में पशुओं को इस प्रकार बाँधते हैं कि एक पंक्ति के पशुओं का मुँह दूसरी पंक्ति के पशुओं के मुँह के सामने होता है। इस पशुशला में बीच का रास्ता दोनों ओर के पशुओं के लिए संयुक्त रूप से भोजन मार्ग के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस व्यवस्था में दोनों तरफ 90 सें0 मी0 चौड़ी पट्टी गोबर उठाने और पशुओं को निकालने के लिए छोड़ी जाती है। उसके बाद दोनों ओर 35 से0 मी0 चौड़ी तथा 5 से0 मी0 गहरी नाली रखी जाती है जो कि मूत्र एवं जल निकास के लिए प्रयुक्त होती है। उसके उपरांत पशुओं के खड़ें होने के लिए 1.75 मीटर x 1.2 मीटर का स्थान दोनों तरफ रखा जाता है। उसके बाद 90 से0 मी0 की चरही दोनों तरफ से होती है और अन्त में बीच का मार्ग जो कि 1.2 मीटर चौड़ा होता है संयुक्त रूप से प्रयोग में आता है।

इस विधि के लाभ

(क) पशुओं को चारा देने में सुविधा एवं कम समय लगना।

(ख) पशुशाला का कम स्थान में भी तैयार होना।

(ग) स्वच्छ दूध निकालने में आसानी।

(घ) पशुओं का आपस में जुड़ाव।

इस विधि के नुकसान

(क) पशुओं में बीमारी की संभावना अधिक होना।

(ख) पशुशाला की सफाई में अधिक समय लगना।

(ग) ज्यादा श्रमिक की आवश्यकता।

2. पूँछ से पूँछ वाली विधि (Tail to Tail system)

इस विधि में पशुओं को दो लाइनों में इस प्रकार बाँधते हैं कि दोनों ओर के पशुओं का मुँह विपरीत दिशा में हो और पूँछ

आमने–सामने। इस व्यवस्था में दोनों ओर दाना, चारा आदि डालने के लिए 90 सें0मी0 चौड़ी मार्ग होती है। इसके उपरांत 90 से0 मी0 चौड़ी चरही या नाद होती है। जिसके बाद 1.75 मीटर x 1.2 मीटर का स्थान पशु के खड़े रहने के लिए होता है। उसके बाद 35 से0 मी0 चौड़ी नाली होती है और अन्त में संयुक्त मार्ग 1.2 मीटर का होता है।

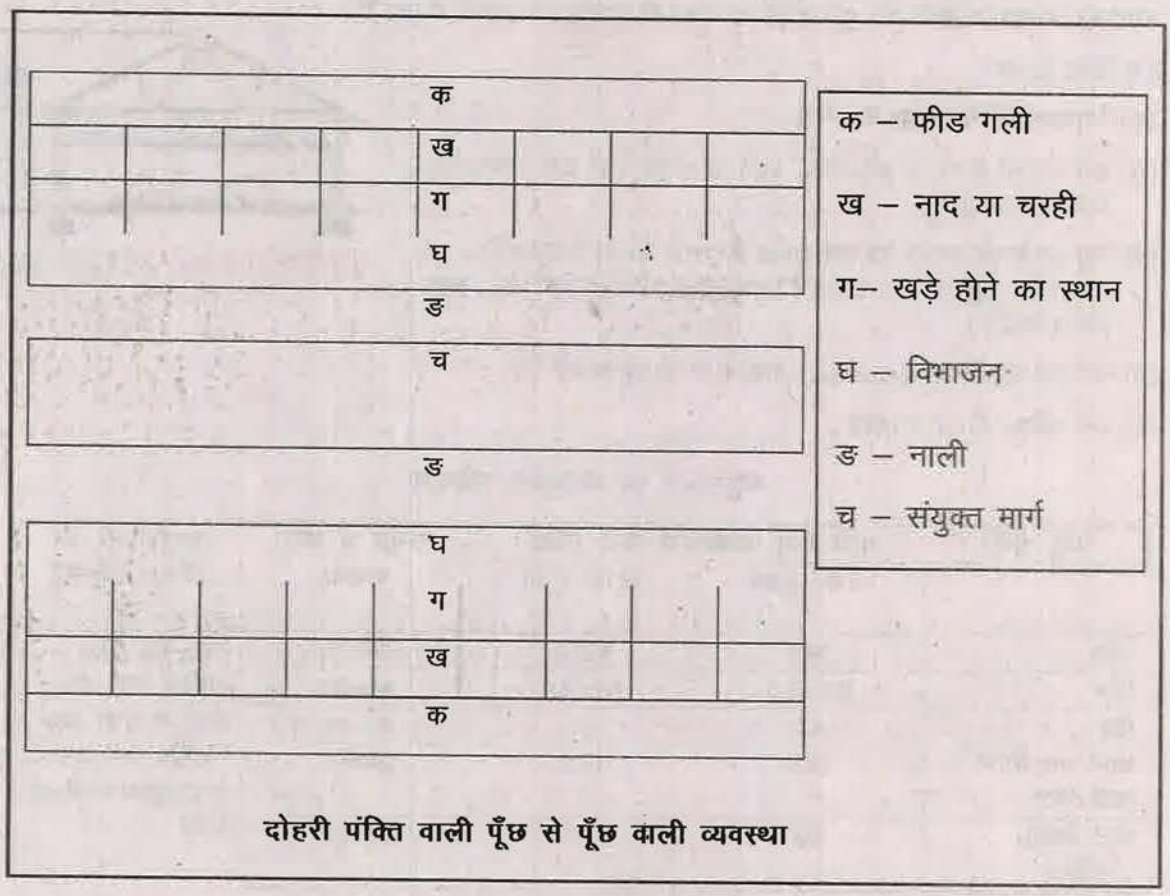

दोहरी पंक्ति वाली पूँछ से पूँछ वाली व्यवस्था

इस विधि के लाभ

(क) रोगों से बचाव एवं पर्याप्त मात्रा में हवा एवं सूर्य प्रकाश का प्रवेश।

(ख) समय एवं श्रमिक की बचत।

(ग) सफाई करने में सुविधा।

इस विधि के नुकसान

(क) चारा–दाना देने में अधिक समय का लगना।

(ख) अधिक जगह की आवश्यकता।

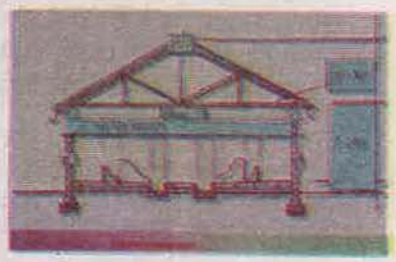

2. पशुओं को खुला रखने की प्रणाली (Loose housing system)

इस प्रणाली में पशुओं को खुला रखा जाता है, उन्हें केवल दूध निकालने समय और कुछ विशेष प्रयोजनों जैसे प्रजनन, उपचार आदि के समय ही बाँधा जाता है। इस प्रणाली में एक ढंके हुए स्थान में लगातार नाद (Continous manger), खड़े होने का स्थान, सबके लिए एक पानी की नाद और खुला पैडोक जो कि दीवार से घिरा रहता है, का प्रावधान होता है। कुछ अलग भवन जैसे ब्यात घर, बछड़ा घर, साँढ़ घर, दुग्धशाला आदि का भी निर्माण इस प्रणाली में जरूरी है।

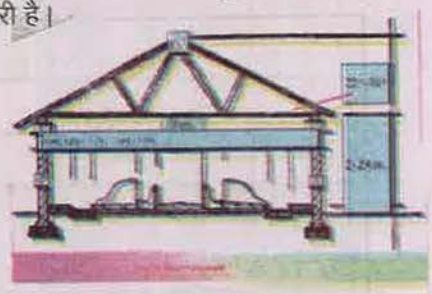

इस विधि के लाभ

(क) पशुशाला के निर्माण पर कम खर्च।

(ख) इस प्रणाली में पशुओं की संख्या बढ़ने पर आसानी से उन्हें समायोजित किया जा सकता है।

(ग) पशु अपने को स्वतंत्र महसूस करता है इससे उनका मनोवैज्ञानिक एवं व्यवहारिक संतुलन बना रहता है। पशु खाने–पीने के लिए सभी समय स्वतंत्र रहते हैं।

(घ) गर्मी की पहचान (Heat detection) आसानी से की जा सकती है।

(ङ) कम श्रमिक की आवश्यकता।

पशुशाला का उपयुक्त परिमाप

पशु श्रेणी	प्रति पशु आवश्यक फर्श ($मी^0$)		समूह में पशु संख्या	पशुशाला की ऊँचाई किनारे पर
	ढँका हुआ	खुला हुआ		
साँढ	12.0	120.0	अकेला	175 से0 मी0 अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में तथा 220 से0मी0 कम वर्षा तथा शुष्क क्षेत्रों के लिए
गाय	3.5–4.0	7.0–8.0	40–50	
भैंस	4.0	8.0	40–50	
ब्याने को तैयार गाय/भैंस	12.0	12.0	अकेला	
छोटे बछड़े /बछिया	2.0	3.0	20–30	
बड़े बछड़े	3.0	4.0	20–30	

भारत की जलवायु एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में भिन्न हो जाती है। इसलिए किसी एक डिजायन को पूरे देश में नहीं अपनाया जा सकता है। किन्तु लूज हाउस को थोड़ा से बदलाव करके उसे पूरे देश में अपनाया जा सकता है। यह हमारे देश के लिए ज्यादा अनुकूल भी है एवं पशुओं के अनुकूल भी।

कुक्कुटों की आवासीय प्रणाली

कुक्कुट पालन एक अच्छा और सस्ता व्यवसाय है जिसमें लागत कम और लाभ अधिक होता है। कुक्कुटपालन से हमे अंडा एवं मांस प्राप्त होता है जो कि उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन का अच्छा स्रोत है और यह हमारे देश में कुपोषण से लड़ने में सहायक हो सकता है। इसके लिए जरूरी है कि अधिकतम उत्पादन लिया जाए जिसके लिए सबसे महत्वपूर्ण है कुक्कुटों के लिए सही आवास प्रबंधन। आवास संबंधित सारे सिद्धांत जो डेयरी पालन में था वे यहाँ भी प्रासांगिक है।

आम तौर पर मुर्गी पालकों द्वारा चार तरह की आवास प्रणाली मुर्गीपालन के लिए प्रयोग में लायी जाती है। इनमें कौन सा उनके द्वारा उपयोग में लाई जाएगी यह किसान की आर्थिक स्थिति, कुक्कुटों की संख्या और उपलब्ध जमीन पर निर्भर करती है।

1. फ्री–रेंज या व्यापक प्रणाली (Free Range or Extensive system)

2. अर्द्ध–गहन प्रणाली (Semi-Intensive system)
3. तह इकाई प्रणाली (Folding unit system)
4. गहन प्रणाली (Intensive system)

1. **फ्री–रेंज या व्यापक प्रणाली (Free Range or Extensive system)** : यह प्रणाली सबसे पुरानी है और यह उन किसानों के द्वारा सदियों से प्रयोग में लाई जा रही है जिनके पास जमीन की कोई कमी नहीं है। इस प्रणाली में एक बड़े से घिरे हुए जगह में उन्हें खुला रखा जाता है। और कहीं–कहीं खम्भे पर खड़ा अस्थायी छत भी बनाया जाता हैं इस प्रणाली में कुक्कुट अपना आहार उस जमीन पर पड़े बीज, तृण और कीड़े–मकोड़े के रूप में करते हैं। उन्हें शिकारी जानवरों एवं परजीवियों से बचाने के उपाय भी किए जाते हैं। परन्तु हाल के दिनों में इस प्रणाली का उपयोग समाप्त हो गया हे।

2. **अर्द्ध–गहन प्रणाली (Semi-Intensive system)** : इस प्रणाली में पक्षियों के लिए एक घर और कुछ खुला स्थान दोनों जरूरी है। इसमें पक्षियों को कम से कम प्रति पक्षी 20–30 वर्ग गज स्थान घुमने के लिए चाहिए। इसमें घरों के फर्श कठोर तथा घुमने का क्षेत्र कच्चा होता हे।

3. **तह इकाई प्रणाली (Folding unit system)** : एक पोर्टेबल (Portable) तह इकाई प्रणाली में पक्षियों को एक छोटे से घुमने के जगह में सीमित रखा जाता है। और उनका स्थान हरेक दिन बदला जाता है, जिससे कि उन्हें नई जमीन मिल सके जहाँ वे अपना कुछ पोषण, तृण, कीड़े–मकोड़े या बीज से कर सके। तह इकाई प्रणाली में सबसे सुविधा जनक है 25 पक्षियों को संभालना।

इस प्रणाली का नुकसान

(क) पक्षियों के साथ ही, खाना और पानी भी ढोना पड़ता है।

(ख) ज्यादा श्रमिक की आवश्यकता ।

4. **गहन प्रणाली (Intensive system)** : इस प्रणाली में पक्षियों को पूरी तरह घर में या तो जमीन पर या तार की जालीनुमा पिंजरे में रखा जाता है। यह प्रणाली बड़े पौल्ट्री फार्म के लिए सबसे कुशल, सुविधाजनक और किफायती है।

इस प्रणाली के लाभ

(क) सबसे कम जमीन की आवश्यकता।

(ख) इसे हम बाजार के नजदीक रखकर पाल सकते हैं जिससे कि ढुलाई का खर्च बचेगा।

(ग) श्रमिक की बचत। एक श्रमिक अकेले 5000 से 10000 पक्षियों की देखभाल यांत्रिकीकरण की मदद से कर सकते हैं।

(घ) जब पक्षी पिंजरे के अन्दर होता है तो उसकी ऊर्जा उत्पादक कार्य में अधिक लगता है।

(ङ) कोई भी वैज्ञानिक प्रबंधन आसानी से किया जा सकता है एवं साथ ही बीमार पक्षियों को समूह से आसानी से हटाया जा सकता है।

गहन प्रणाली के अन्तर्गत मुख्यतः बैटरी प्रणाली और डीप लिटर प्रणाली ही सबसे प्रचलित है।

(क) **बैटरी प्रणाली** : यह पॉल्ट्री उत्पादन के लिए सबसे गहन प्रणाली है। जिसमें कि सबसे कम जमीन (सतह) की आवश्यकता होती हैं इसमें पक्षियों को एक पिंजरे में रखा जाता है और उतनी ही जगह दी जाती है जितने में वे आराम से उठ और बैठ सके। यह पिंजरा, तार की जालीनुमा संरचना होती है जिसे या तो पोल्ट्री घर में स्टैण्ड पर फिट किया जाता है या छत से लटका जा सकता है। पिंजरे की ढाल पीछे से आगे (Back to front) की तरफ होता हे जिससे कि अंडा अपने आप अंडा रखने वाली जगह में आ जाती है। पिंजरे के नीचे एक ट्रे (Tray) रखा होता हे जिसमें कि पक्षियों की बीट जमा होती है। खाने और पीने के लिए पिंजरे के बाहर पात्र लटका होता है, जिससे वे आसानी से अपनी गर्दन निकालकर खाते–पीते हैं। साथ ही जरूरत पड़ने पर इसे बहुमंजिला भी बनाया जा सकता है। यह प्रणाली उष्ण देशीय (Tropical) देशों में काफी सफल है।

इस प्रणाली के लाभ

(क) पक्षियों की ऊर्जा बचत जिसका उपयोग अंडा एवं मांस उत्पादन में।

(ख) पक्षियों की उत्पादक क्षमता को नोट किया जा सकता है। जिससे कि कलिंग (कम उत्पादन वाले पक्षियों को समूह से निकालना) आसान हो जाती है।

(ख) डीप लिटर प्रणाली :

इस प्रणाली में भूसा, पुआल, मुँगफली का भूसा, पत्ते, गन्ने की खोई आदि से बने लिटर को सतह या जमीन पर 8–12 इंच गहराई तक बड़े से बाड़े में बिछाया जाता है और उस पर पक्षियों को रखा जाता है। इस लिटर में पक्षियों की बीट धीरे–धीरे मिलती जाती है और गर्मी और बैक्टीरियल कार्रवाई (Bacterial acton) के चलते अपघटन होकर बिल्ट–अप लिटर का निर्माण करती है। इस प्रकार इस लिटर सामाग्री की समृद्धि (Enrichment) होती है। और इसमें कुछ पोषक तत्व जैसे विटामिन B_{12} और एनिमल प्रोटीन फैक्टर (Animal Protein Factor) विद्यमान रहते हैं। बाद में इसका उपयोग उर्वरक के रूप में भी किया जा सकता है।

इस प्रणाली के लाभ

(क) बिल्ट–अप लिटर पक्षियों को कुछ पोषक तत्व प्रदान करते हैं।

(ख) इससे हमें उर्वरक भी प्राप्त होता है। सामान्यतः 35 अंडे देने वाली मुर्गियाँ 1 साल में कम से कम एक टन डीप लिटर उर्वरक देती है।

(ग) अगर सभी हालात सही हों और लिटर भींगा न हो एवं उसकी उलट–पुलट सही होती रहे तो पूरे वर्ष बाड़े के फर्श को साफ करने की आवश्यकता नहीं होती है।

डीप लिटर प्रणाली में पोल्ट्री बर्डस के लिए जमीन या सतह की जरूरत

उम्र (सप्ताह में)	क्षेत्र या स्थान / पक्षी (वर्ग सें0 मी0 में)
0–4	450
5–10	900
11–20	1350–1800
20 से ऊपर	1800–2250

जमीन/सतह की जरूरत बाड़े या पिंजरा प्रणाली में

पक्षी पिंजरा /बाड़ा	क्षेत्र या स्थान (वर्ग सें0 मी0 में)
एक पक्षी पिंजरा	900
दो पक्षी पिंजरा	500
तीन पक्षी पिंजरा	480
चार पक्षी पिंजरा	470
पाँच पक्षी पिंजरा	450

कुक्कुटों के सभी आवासीय प्रणाली के अध्ययन के बाद हम कह सकते हैं कि आजकल गहन प्रणाली सबसे ज्यादा प्रचलित है एवं उसमें भी पिंजरा (Cage) प्रणाली सबसे ज्यादा, जिससे कि कम जगह में भी ज्यादा से ज्यादा पक्षी हम पाल सकते हैं और ज्यादा से ज्यादा आय प्राप्त कर सकते हैं।

हमने सीखा

- पशुशाला, पशुओं की विपरीत मौसम में सुरक्षा प्रदान करता है।
- पशु जब अपने कम्फर्ट जोन में रहता है तब सबसे ज्यादा उत्पादक होता है।
- भारतवर्ष में गाय एवं भैंसों के लिए मुख्यतः पशुओं को बाँधकर रखने की प्रणाली एवं पशुओं को खुला रखने की प्रणाली चलन में है।
- पशुओं को बाँधकर रखने की प्रणाली में पशुओं को एक ही स्थान पर खिलाना, पिलाना, दूध निकालना आदि किया जाता है।
- दोहरी पंक्तिवाली पशुशाला में पशुओं को दो विधियों से रखा जा सकता है। मुँह से मुँह वाली विधि एवं पँछ से पँछ वाली विधि।
- पशुओं को खुला रखने की प्रणाली में पशुओं को केवल दूध निकालने समय और कुछ विशेष प्रयोजनों के समय ही बाँधा जाता है।
- गहन प्रणाली बड़े पॉल्ट्री फार्मों के लिए सबसे सुविधाजनक और किफायती है।
- बैटरी प्रणाली में पक्षियों को एक पिंजरे में रखा जाता है और उतनी ही जगह दी जाती है जितने में वे आराम से उठ और बैठ सके।
- बिल्ट–अप लिटर पक्षियों को कुछ पोषक तत्व भी प्रदान करते हैं।

अभ्यास

1. खाली स्थानों को भरिए :–

(क) .....जोन में पशुओं की उत्पादकता सर्वोत्तम होती है।

(ख) पशुशाला का मुख्य द्वार ..... की ओर होनी चाहिए।

(ग) भारतवर्ष में गाय एवं भैंसों के लिए मुख्यतः ..... प्रणाली एवं ..... प्रणाली की पशुशाला का चलन है।

(घ) गायों के लिए प्रति पशु आवश्यक फर्श ..... मी0^2 होनी चाहिए।

(ङ) कुक्कुटों के लिए ..... प्रणाली में कम जगह में अधिक पक्षियों को रखा जा सकता है।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

(क) पशुओं को बाँधकर रखने की प्रणाली का वर्णन करें।

(ख) मुँह से मुँह विधि एवं पूँछ से पूँछ विधि के लाभ एवं नुकसान पर चर्चा करें।

(ग) पशुओं को खुला रखने की प्रणाली से क्या समझते हैं ?

(घ) कुक्कुटों की डीप लिटर प्रणाली की चर्चा करें।

(ङ) कुक्कुटों की गहन प्रणाली की विस्तृत चर्चा करें।

*****

6.5. पशुओं का आहार संबंधी सिद्धांत

पोषण विज्ञान में हम खाद्य/भोज्य पदार्थों का शरीर के उत्तक के रूप में बदलने की प्रक्रिया का अध्ययन करते हैं। खाद्य पदार्थों का मुँह में चबाने, पाचन, अवशोषण, चयापचय की विभिन्न प्रतिक्रियाओं एवं पोषक तत्वों का कोशिकाओं में संवहन और अपशिष्ट का उत्सर्जन का अध्ययन ही पोषण विज्ञान है।

जीवन को बनाए रखने के लिए पोषण की सतत आवश्यकता है। पोषण प्राप्त करने के लिए आहार की आवश्यकता है। सभी भोज्य अथवा खाद्य पदार्थ आहार है जो सुपाच्य हो एवं उससे जीवन के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त हो।

आहार के स्रोत :

आहार के दो स्रोत प्रमुख हैं : (1) वनस्पति स्रोत एवं (2) पशु द्वारा प्राप्त स्रोत

1. **वनस्पति स्रोत :** इसे हम कई भागों में बाँट सकते हैं

(क) खरीफ फसल : गर्मी के मौसम में प्राप्त फसल यथा धान, मकई, ज्वार, दिनानाथ घास, टियोसिन्टे, सोयाबीन, लोबिया एवं गुवार इत्यादि प्रायः पशु को खिलाने के काम आता है।

(ख) रबी फसल : ठंढ़ के मौसम में प्राप्त विभिन्न फसल भी पशुओं को खिलाने नें उपयोग करते हैं। उदाहरण गेहूँ, जई, चना, बरसीम, ल्यूसर्न इत्यादि।

(ग) बहुवर्षीय फसल : इसमें प्रमुख विभिन्न प्रकार के घास यथा, नेपियर घास, पारा घास, सूडान घास आदि है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पेड़ों के पत्ते भी खिलाने के काम में आते हैं। जैसे बबूल, पाकड़, पीपल आदि।

इन फसलों में दलहनीय एवं गैर दलहनीय दोनों फसल होते हैं।

दलहनीय फसल : सोयाबीन, लोबिया, बरसीम, ल्यूसर्न, गुवार आदि दलहनीय फसल हैं।

गैर दलहनीय फसल : धान, गेहूँ, जई, जोवार एवं विभिन्न घास इसके उदाहरण हैं।

दलहनीय फसलों में प्रोटीन की मात्रा गैर दलहनीय फसलों की तुलना में अधिक होता है।

2. **पशु स्रोत :** पशु एवं पक्षी से प्राप्त खाद्य पदार्थ दूध, मांस, अण्डा, मछली में विभिन्न पोषक तत्व (प्रोटीन, खनिज, एवं विटामिन) बहुतायत मात्रा में रहता है। यद्यपि, पशुओं को इन खाद्य पदार्थों को खिलाने में साधारणतया प्रयोग नहीं करते। पशुओं को खिलाने के लिए पशुओं के विभिन्न उत्पाद प्रयोग में लाते हैं। उदाहरणस्वरूप मछली चूर्ण, माँस, चूर्ण, रक्त चूर्ण, अस्थि चूर्ण एवं दूग्ध चूर्ण विभिन्न पशु वर्ग को खिलाने के प्रयोग में लाते हैं। यह सभी प्रोटीन एवं खनिज के प्रमुख स्रोत हैं।

इन स्रोतों के अतिरिक्त खनिज स्रोत जैसे चूना पत्थर, संगमरमर, रॉक फॉस्फेट, नमक आदि पशुओं को खिलाने के प्रयोग में लाते हैं।

पशुओं का समुचित शारीरिक विकास शीघ्रता से हो उसके लिए हमलोग वृद्धिदायी आहार (Feed Additive) को प्रयोग में लाते हैं। इसके लिए इन दिनों प्रोबायोटिक एवं प्री–बायोटिक का प्रयोग प्रमुख रूप से होता है।

पोषक तत्व :

आहार के अनेकों स्रोत हैं जिनसे हमें पोषण मिलता है। इसके द्वारा ही शरीर को आवश्यक पोषक तत्व मिलता है। एक पोषक तत्व रासायनिक तौर पर एक समान एवं उसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता शरीर क्रिया के लिए समान होता है। पोषक तत्वों को हम दो भागों में वर्गीकरण करते हैं (1) कार्बनिक (2) अकार्बनिक

कार्बनिक पोषक तत्वों के अन्तर्गत निम्नलिखित पोषक तत्व है :

(i) **कार्बोहाइड्रेट :** वास्तव में यह पॉलीहाइड्राक्सीएल्डीहाइड या कीटोन होता है। शरीर में मुख्य रूप से ऊर्जा के स्रोत के रूप में उपयोग होता है। प्रकृति में यह ग्लूकोज, फ्रुक्टोज, सुक्रोज, लैक्टोज, स्टार्च, हेमीसेलुलोज एवं सेलुलोज के रूप में प्रदत्त है। प्राकृतिक रेशा का पशु पोषण में महत्वपूर्ण रोल है जो मुख्यतः सेलुलोज से बना होता है।

(ख) वसा : यह वसीय अम्ल एवं ग्लिसरॉल का इस्टर होता है। यह ऊर्जा का सुरक्षित / द्वितीयक स्रोत है एवं पशु कोशिका के निर्माण में सहायक है । कार्बोहाइड्रेट की तुलना में वसा से 2.25 गुणा ऊर्जा अधिक प्राप्त होता है। दो आवश्यक वसीय अम्ल लिनोलेईक अम्ल एवं लिनोलेनिक अम्ल आहार से मिलना अत्यावश्यक है, क्योंकि यह शरीर में संश्लेषित नहीं हो पाता है।

(ग) प्रोटीन : यह अमीनो अम्ल का पॉलीमर है। प्रकृति में बीस से ज्यादा अमीनो अम्ल है। जिसमें दस अमीनो अम्ल का विभिन्न पशु वर्ग में आहार से मिलना अत्यावश्यक है। इसका मुख्य कार्य कोशिकाओं का निर्माण करना है। सभी आहार या खाद्य पदार्थों में विभिन्न अमीनों अम्ल का मात्रा भिन्न–भिन्न होता है। इन्हीं अमीनो अम्ल के मात्रा के आधार पर प्रोटीन गुणवत्ता का गणना की जाती है। पशु स्रोत से प्राप्त प्रोटीन की गुणवत्ता वानस्पतिक स्रोत के प्रोटीन के तुलना में उत्तम होता है। परन्तु यह देखा गया है कि वानस्पतिक स्रोत के गैर दलहनीय एवं दलहनीय फसल से प्राप्त प्रोटीन को मिला कर खिलाने पर पुनः उत्तम स्रोत बन जाता है।

तालिका –1
पोषक तत्वों की वर्गीकरण

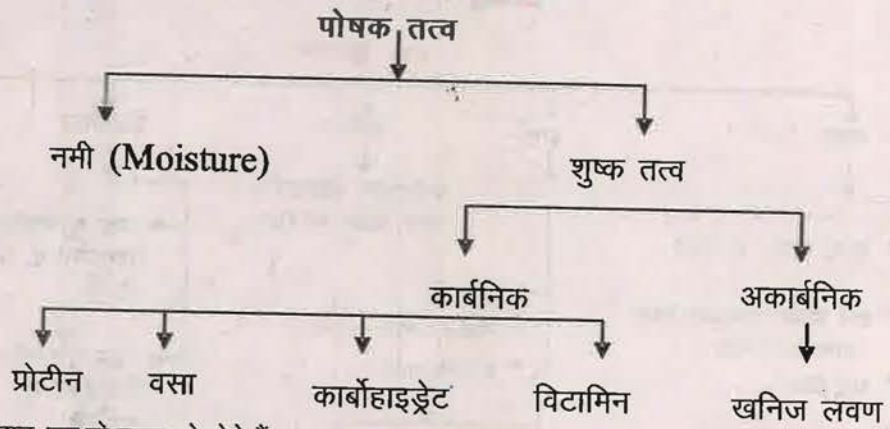

(घ) विटामिन : मुख्यतः यह दो प्रकार के होते हैं :

(1) **वसा में घुलनशील :** विटामिन ए, डी, ई एवं के

(2) **जल में घुलनशील :** विटामिन बी संवर्ग एवं सी विटामिन की आवश्यकता शरीर में बहुत न्यून मात्रा में होता है एवं विभिन्न आहार में यह न्यूनाधिक रहता है।

अकार्बनिक पोषक तत्व :

इसके अन्तर्गत कई खनिज़ लवण जैसे कैल्शियम, फॉस्फोरस, सोडियम, पोटाशियम, लौह, ताँबा, जस्ता, कोबाल्ट आते हैं। यह शरीर के ढाँचा स्वरूप, बॉडी फ्लूड का पीएच., आस्मोटिक दाब को निर्धारित करता है।

इन सबों के अतिरिक्त जल जीवन के लिए महत्वपूर्ण पोषक तत्व है। शरीर में औसतन वजन का दो तिहाई भाग जल होता है। पेय जल के अतिरिक्त आहार एवं शरीर के अन्तर्गत चयापचय क्रिया के द्वारा भी जल प्राप्त होता है। विभिन्न शारीरिक क्रिया एवं शरीर के उष्मा बनाए रखने में जल का महत्वपूर्ण भूमिका है। ऐसा माना जाता है कि यदि दस प्रतिशत पानी की कमी शरीर में हो जाए तो जीवन का अंत हो जाता है।

उपरोक्त वर्णित जानकारी के आधार पर पशुओं के आहार को हम निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं।

1. **रफेज (Roughage) :** इसमें रेशे की मात्रा 18 प्रतिशत से अधिक होता है। मुख्यतः यह ऊर्जा के स्रोत के रूप में एवं पेट भरने के लिए उपयोग होता है। तुलनात्मक रूप में इसमें पोषक तत्वों की कमी एवं कम सुपाच्य माना जाता है। नमी के प्रतिशत के आधार पर इन्हें दो भागों में बाँटा गया है।

(क) सूखा चारा : इसमें नमी(Moisture) की मात्रा 15 प्रतिशत से कम रहता है। जैसे हे (hay) भूसा, सूखी ईख (Bagasse)

(ख) हरा चारा : इसमें नमी 15 प्रतिशत से लेकर 80 प्रतिशत तक हो सकता है। नमी की मात्रा चारे के किस्म, पौधों के परिपक्वता आदि के आधार पर निर्भर करता है। लेकिन इससे विटामिन, मुख्यतः केरोटीन मिलता है। सभी उपजाये चारा, घास, पेड़ के पत्ते आदि इसके अन्तर्गत आते हैं।

2. कन्सन्ट्रेट (Concentrate)

इसमें रेशा की मात्रा 18 प्रतिशत से कम, ज्यादा सुपाच्य एवं विभिन्न पोषक तत्वों से भरपूर होता है। विभिन्न पोषक तत्वों की प्रचुरता के आधार पर हम इन्हें निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं

(क) प्रोटीन दायी कन्सन्ट्रेट : इन आहार में प्रोटीन की मात्रा 18 प्रतिशत से अधिक होता है। श्रोत के आधार पर ये दो प्रकार के हैं।

तालिका –2
पशु आहार का वर्गीकरण

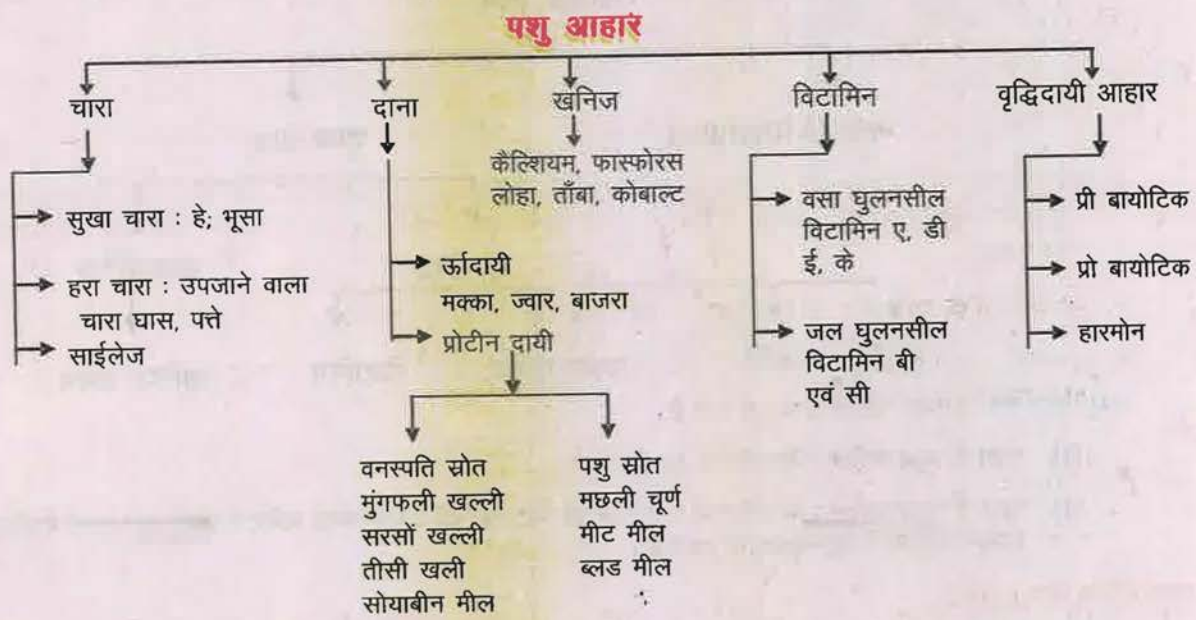

i. वनस्पति स्रोत से प्राप्त प्रोटीन

पशुओं के लिए यह प्रमुख स्रोत है। इसमें प्रोटीन 20–50 प्रतिशत तक मिलता है, परन्तु अमीनों अम्ल की मात्रा एवं उपलब्धता के आधार पर इस प्रोटीन की गुणवत्ता कम होती है। उदाहरण सोयाबीन, मूँगफली, तिलहन की खल्ली सभी दलहनीय फसल आदि।

ii. पशु स्रोत से प्राप्त प्रोटीन : यथा दूध, माँस, अंडा आदि । इनकी प्रोटीन गुणवत्ता बेहतरीन माना जाता है। अंडा से प्राप्त प्रोटीन को मानक प्रोटीन का दर्जा FAO/WHO द्वारा दिया गया हे। उदाहरण – मछली चूर्ण, ब्लड मिल, मिट मिल इत्यादि।

(क) उर्जादायी कन्सन्ट्रेट : वैसा खाद्य व आहार जिससे शरीर को उर्जा प्रचुर मात्रा में मिले। उदाहरण सभी अन्न एवं अन्न के उत्पाद चोकर, चून्नी के अतिरिक्त छोआ (molasses)

(ख) खनिज लवण दायी आहार : मिनरल मिक्सचर अस्थि चूर्ण, मछली चूर्ण, रॉक फॉस्फेट आदि। इनसे हमें कैल्शियम फॉसफोरस, ताम्बा, लोहा, जस्ता आदि कई महत्वपूर्ण खनिज प्राप्त होते है।

(घ) वृद्धि दायी आहार : प्रोबायोटिक, प्रीबायोटिक एवं हार्मोन आदि।

इन सभी आहार एवं आहार स्रोत को मिलाकर पशुओं के लिए संतुलित आहार बनता है। संतुलित आहार से पशुओं को 24 घंटे के लिए सभी पोषक तत्व आवश्यक मात्रा एवं अनुपात में मिलता है। अतः हमें विभिन्न आहार में उपस्थित पोषक तत्वों की जानकारी आवश्यक है। इससे पशु के स्वास्थ्य एवं उनकी उत्पादकता की सीधा सम्बन्ध हे। पशुपालन व्यवसाय के अन्तर्गत् आवर्ती व्यय का लगभग दो–तीहाई व्यय आहार के मद में होता है। अतः इसकी उचित जानकारी होने पर व्यय में कमी की जा सकती है और अपरोक्ष रूप से लाभ बढ़ाया जा सकता है।

पशुओं के संतुलित आहार में स्थानीय चारा–दाना का महत्व :

ध्यान देने की जरूरत है कि स्रोत यदि स्थानीय है तो उपलब्धता बढ़ जाती है। इससे पशु आहार की लागत काफी कम होगी और लाभांश भी बढ़ेगा। साथ ही पशुपालकों को चारा दाना के लिए भाग–दौड़ भी कम करना पड़ता है।

स्थानीय स्रोत के चारे–दाने में पोषक तत्वों की अधिकता भी रहती है, विशेषतः विटामिन की। इनकी स्वाद भी बेहतर होती है क्योंकि ये ताजा रहता है। भंडारित चारे–दाने में स्थानीय चारे–दाने की तुलना में विषज जैसे अफ्लाटॉक्सिन आदि अधिक पाए जाते हैं।

हमने क्या सीखा :

- पोषण विज्ञान में खाद्य/भोज्य पदार्थों का शरीर के उत्तक के रूप में बदलने की प्रक्रिया का अध्यन करते हैं।
- भोज्य पदार्थ से आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त होता है। आहार के स्रोत मुख्यतः दो हैं, जो बताता है कि आहार वनस्पति /पशु स्रोत से मिलता है। आहार से हमें छः पोषक तत्व यथा कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, विटामीन, खनिज एवं जल मिलता है।
- पोषक तत्वों के उपलब्धता एवं सुपाच्यता के आधार पर पशुओं के आहार को चारा एवं दाना में बॉटा गया है।
- वनस्पति स्रोत में प्रोटीन की मात्रा यद्यपि ज्यादा होता है परन्तु अमिनों अम्लों की उपलब्धता के आधर पर पशु स्रोत से प्राप्त प्रोटीन उत्तम माना जाता है।

अभ्यास

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

(क) पोषण विज्ञान में खाद्य /भोज्य पदार्थों का शरीर के ..... बदलने की प्रक्रिया का अध्ययन करते हैं।

(ख) आहार के दो प्रमुख स्रोत ..... एवं ..... है।

(ग) खरीफ फसल की बुआई ..... के मौसम में करते हैं।

(घ) कुल पोषक तत्वों की संख्या ..... है।

(ङ) रफेज/सूखा चारा में रेशा की मात्रा ..... प्रतिशत से अधिक होता है।

2. बहु विकल्प प्रश्न

1. रबी फसल की बुआई कब करते हैं।

(क) ठंढ़ (ख) गर्मी (ग) वसंत (घ) कभी नही

2. दलहनीय चारा का उदाहरण है।

(क) बरसीम (ख) जई (ग) मक्का (घ) गन्ना

3. कार्बोहाइड्रेट रासायनिक तौर पर है।

(क) अम्ल (ख) पॉलीहाइड्राक्सी अल्डीहाइड या कीटोन

(ग) अल्कोहल (घ) कुछ भी नहीं

4. अकार्बनिक पोषक तत्व से पशुओं को कौन सा पोषक तत्व मिलता है।

(क) विटामिन (ख) प्रोटीन (ग) खनिज (घ) रेशा

5. सूखा चारा में नमी की प्रतिशत होती है।

(क) 10 प्रतिशत (ख) 12 प्रतिशत (ग) 15 प्रतिशत (घ) 18 प्रतिशत

3. निम्न स्तंभों का मिलान करें

स्तम्भ 'क'	स्तम्भ 'ख'
(i) साइलेज	(i) वृद्धिदायक आहार
(ii) ऊर्जादायी कन्सन्ट्रेट	(ii) नमक
(iii) मछली चूर्ण	(iii) ज्वार
(iv) प्री बायोटिक	(iv) पशु स्रोत
(v) खनिज	(v) रफेज

4. परिभाषित करें :

(i) पोषण (ii) पोषक तत्व (iii) रफेज (iv) कार्बोहाइड्रेट

परियोजना कार्य

आस–पास मिलने वाला चारा – हरा, सूखा एवं दाना स्रोत का तालिका बनाएँ।

*****

(घ) अधिक दूध देने वाले पशुओं में खीस एक बार में पूरी नहीं निकालनी चाहिए बल्कि थोड़ा–थोड़ा करके दिन में 3–4 बार में निकालें। एक बार में पूरा खीस निकालने से मिल्क फीबर होने की संभावना बढ़ जाती है। खीस को बछड़े के वजन के अनुसार खिलाना चाहिए। सामान्यतः यह बछड़े के बजन के 1/10 भार के बराबर खिलाया जाता है।

(ङ) बछड़ों की पहचान के लिए उनके बाई कान में टैटुन्ग (Tattooing) करना चाहिए। इसमें एक अक्षरनुमा खाँचे के द्वारा कान में अक्षरों को उकेरा जाता है।

(च) बछड़ों को दो तरीके से पाला जाता है। एक तो माँ के साथ रखकर और दूसरा माँ से अलग रखकर। अगर बछड़े को मॉ से अलग कर पाला जा रहा हो तो उसके दूध पिलाने का पूरा इंतजाम अच्छी तरह से होना चाहिए। कम से कम 3 महीने तक सभी बछड़ों का अपना घर होना चाहिए और नियमित उनके वजन के 1/10 भार के बराबर हल्का गर्म दूध पिलाना चाहिए।

(छ) बछड़ों का डिसबडिंग (सींग हटाना) 15 दिनों के अन्दर करना चाहिए जिससे की जब वे बड़े हो तो सींग के बिना हो इससे उसे संभालने में आसानी होगी एवं आक्रमण की स्थिति में नुकसान की संभावना कम होगी।

(ज) साथ ही साथ बछड़ों के सही एवं रोगरहित विकास के लिए नियमित टीकाकरण एवं परजीवी से बचाव के लिए स्प्रेयिंग एवं डीवर्मिंग करना चाहिए।

3. बाछा–बाछी का प्रबन्धन

गाय/भैंसों की उत्पादक एवं पुनरूत्पादक क्षमता बाछा एवं बाछियों के उचित देखभाल एवं प्रबंधन पर निर्भर करती है। सामान्यतः 15–20 प्रतिशत गायों को हरेक वर्ष समूह से विभिन्न कारणों से हटाया जाता है और इसके बदले नये बाछियों को रखा जाता है। अर्थात् ये बाछियाँ ही भविष्य का समूह निर्माण करती है अतः इनकी उत्तम देखभाल जरूरी है। इनके बेहतर प्रबंधन के लिए निम्नांकित बातों का ध्यान रखना जरूरी है –

(क) अच्छी गुणवत्ता का चारा एवं दाने की उपलब्धता एवं सही मात्रा में खाना खिलाना एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है।

(ख) कम से कम 2.5 से 3 वर्ग मीटर की ढंकी हुई जगह की उपलब्धता हरेक बाछा/बाछी के लिए जरूरी है। आरामदायक निवास उनके उम्र एवं शरीर के हिसाब से होना बहुत जरूरी है तभी बढ़ने की दर (Growth rate) सही होगी।

(ग) बाछियों में गर्मी की पहचान (Heat detection) जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी गर्भाधान होगा और उतनी ही जल्दी बच्चे की उत्पति होगी। इसीलिए सही गर्मी की पहचान सही समय पर बहुत जरूरी है। सामान्यतः पशु 15–18 महीने में प्रौढ़ता (Maturity) को प्राप्त कर लेते हैं, उसके बाद जितनी जल्दी हम गर्मी की पहचान करेंगे उतना ही जल्दी पशु से उत्पादन ले पायेंगे। इसीलिए दिन में कम से कम तीन बार उसे गर्मी की पहचान के लिए देखना चाहिए।

(घ) बाछियों को गर्भाधान के लिए तभी ले जाना चाहिए जब वो 200 –250 किलोग्राम का हो और वह 15–18 महीने की आयुवर्ग का हो अर्थात् सही बच्चा प्राप्त करने के लिए माँ की सही आयु और वजन का होना अनिवार्य है।

(ङ) साथ ही साथ जो बाछिया बच्चा जन्म देने वाली स्थिति में हो उनके खाने की व्यवस्था अच्छी तरीके की होने चाहिए क्योंकि उन्हें अपने एवं अपने बच्चे दोनों के लिए पोषण की आवश्यकता होती है।

रोचक तथ्य

(क) डिसबडिंग कास्टिक पोटाश स्टिक या इलेक्ट्रिक डिहॉरनर से किया जाता है।

(ख) खीस में इम्यूनोग्लोबुलिन्स (Immunoglobulins) होते हैं जो बछड़ों को रोगों से लड़ने में सहायता प्रदान करते हैं।

(ग) टैटुन्ग (Tattooing), टैटुन्ग फोरसेप (Tattooing Forcep) की मदद से किया जाता है।

(घ) सही रिकार्डिंग से हमें बछड़ों को खिलाने, कोई बीमारी, या अन्य जानकारी लेने में मदद मिलती है।

(ङ) शुरू के दिनों में बछड़ों का पेट सामान्य पेट वाले पशुओं की तरह काम करता है बाद में यह चार पेट वाले पशुओं की भाँति हो जाते हैं।

6.6. पशुओं एवं कुक्कुटों का प्रबंधन

एक सफल डेयरी व्यवसाय एवं मुर्गीपालन के लिए यह जरूरी है कि उनके हरेक स्तर पर सही ध्यान एवं सही प्रबंधन की व्यवस्था सुनिशिचित हो। यानि हरेक वर्ग के पशुओं की उचित देखभाल ही उन पशुओं की सही आनुवांशिक क्षमता को प्रकट होने में मददगार साबित होगी जो कि उनसे सही उत्पादन लेने में उपयोगी होगी। इसी कड़ी में हम विभिन्न वर्ग के पशुओं की देखभाल एवं प्रबंधन का अध्ययन करेंगे।

1. ब्याने के समय गाय / भैंस की देखभाल एवं प्रबंधन :

गाभिन होने के पश्चात एक गाय 9 महीने 9 दिन और भैंस 10 महीने 10 दिन में बच्चा देती है । गाभिन पशुओं की देखभाल अन्य पशुओं की तुलना में अधिक करनी पड़ती है। इस प्रक्रिया को तीन चरणों में बाँटकर समझा जा सकता है। (क) ब्याने के पहले देखभाल (ख) ब्याने के समय देखभाल एवं (ग) ब्याने के बाद देखभाल एवं प्रबंधन।

(क) ब्याने के पहले देखभाल : एक स्वस्थ पशु ही स्वस्थ्य बच्चे को जन्म दे सकती है। इसलिए गाभिन पशुओं की अच्छी देखभाल एवं उचित आहार, स्वस्थ्य बच्चे के जन्म के लिए जरूरी है। इसके लिए सबसे पहले ब्याने के 7–10 दिन पहले गाभिन पशु को अन्य पशुओं से अलग कर ब्यात घर में रख जाता है जहाँ कि उनकी अच्छी तरह देखभाल की जा सके। ब्यात घर साफ, सुखा, जीवाणु रहित एवं ज्यादा जगह का होना चाहिए जिससे कि सुरक्षित एवं आसानी से बच्चा जन्म ले सके। साथ ही साथ उत्तम आहर की व्यवस्था भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि भ्रूण का विकास अन्तिम दो–तीन महीनों में तेजी से होता है और उनकी जरूरत को पूरा करने के लिए उत्तम आहार की आवश्यकता है। उनके खाने में सामान्य आहार के अलावे 2 की0ग्रा0 / दिन दाने की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि ब्याने की अनुमानित तिथि से 2 माह पूर्व से पशु से दूध लेना बन्द कर देना चाहिए, जिससे की थन को सही आराम मिल सके। कभी–कभी ज्यादा दूध देने वाली गायों में ब्याने से पहले भी दूध दूहने की आवश्यकता पड़ सकती है उस स्थिति में खीस को संरक्षित रखकर बाद में बछड़े को खिलाया जा सकता है।

(ख) ब्याने के समय देखभाल : यह बहुत ही क्रिटिकल समय है इस समय सही देखभाल एवं जागरूक रहना जरूरी है। बच्चा गर्भाशय में एक पानी की थैलीनुमा संरचना में रहता है जो कि ब्याने के एक घंटा पहले दिखने लगता है इसके फटते ही बच्चा बाहर आ जाता है। अगर इस समय किसी भी तरह की परेशानी हो तो पशुचिकित्सक से परामर्श जरूरी है। इस ब्याने की पूरी प्रक्रिया में सामान्यतः 58 मिनट का समय लगता है।

(ग) ब्याने के बाद देखभाल एवं प्रबंधन : सामान्यतः यह देखा गया है कि ब्याने के 10–12 घंटे के अन्दर जेर अपने आप बाहर आ जाता है, परन्तु अगर वह 12–18 घंटे के अन्दर स्वतः बाहर नहीं आता है तो बाहरी मदद के द्वारा उसे बाहर निकालना जरूरी है। पशु जेर न खा ले, इसका ध्यान रखें एवं जेर को किसी गहरे गड्ढ़े में डाल दे। ब्याने के बाद गायों/भैंसों के जननांगों, पूंछ, अर्द्धपार्श्व आदि को साफ गुनगुने पानी में पोटैशियम परमैगनेट मिलाकर धो देना चाहिए। गाय को ठंढ से बचाने के लिए गर्म पानी या गर्म गुड़ का शर्बत पीने को देना चाहिए। ब्याने के 3–4 दिन बाद तक हल्का खाना या जल्द पच जाने वाला खाना (लैक्सेटिब डाइट) देना चाहिए।

2. नवजात बछड़ों की देखभाल

नवजात बच्चे ही भविष्य का समूह निर्माण करते हैं। और इन्हीं पर फार्म का भविष्य निर्भर करता है। अगर इसका प्रबंधन अच्छी तरह से होगा तो अच्छे गाय और साँढ़ बनेंगे और फार्म सफलतापूर्वक चलेगा इसिलिए इस समय बछड़ों पर ध्यान देना बहुत ही जरूरी है।

(क) जन्म के तुरंत बाद बच्चे के मुँह एवं नाक से लार (Mucus) को साफ करना चाहिए। अगर बछड़े को साँस लेने में दिक्कत हो या सांस नहीं ले रहा हो तो तुरंत कृत्रिम श्वसन, (छाती को दबाना और छोड़ना) के द्वारा साँस लेने में मदद देनी चाहिए। साथ ही साथ पूरे शरीर को साफ कर सुखाना चाहिए।

(ख) ब्याने के उपरांत बछड़े की नाल काटकर उस पर टिंक्चर आयोडीन लगाना चाहिए।

(ग) उसके बाद बछड़े को जितनी जल्दी हो सके खीस पिलाना चाहिए। जहाँ तक संभव हो जन्म के 3–6 घंटे के अंदर खीस पिलाना शुरू कर देना चाहिए और 3–4 दिनों तक पिलाना चाहिए। यह जितनी जल्दी पिलाया जाएगा, खीस का अवशोषण उतनी अच्छी तरह होगा क्योंकि शुरू के घंटों में आँत की छिद्रता अधिक रहने के कारण अवशोषण क्षमता अधिक होती है। खीस पिलाने से बछड़ों में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है और उसके बीमार होने की संभावना घट जाती है।

4. दूध देती गायों का प्रबंधन

पशुओं से ज्यादा से ज्यादा उत्पादन के लिए सबसे महत्वपूर्ण है चारे एवं दाने का बेहतर प्रबंधन। साथ ही साथ पशुशाला का आरामदायक होना भी उतना ही जरूरी है नहीं तो पशु अपनी ऊर्जा को अपने जीविका संरक्षण के लिए व्यर्थ बर्बाद करेगा। एक और महत्वपूर्ण पहलू जो सही उत्पादन लेने के लिए जरूरी है वो है सही समय (Timing) पर दुहना एवं दूध दुहने की बारंबारता (Frequency)। दूध देती गायों के प्रबंधन के लिए कुछ महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देना जरूरी है –

(क) गायों के खाने की पूरी मात्रा का निर्धारण उसके पूरे वजन के हिसाब से किया जाता है जो कि सामान्यतः उसके वजन का 2–2.5 प्रतिशत (On dry matter basis) है।

(ख) अगर गायों को इच्छानुसार भरपुर दलहनी चारा उपलब्ध कराया जाता है तो 10 किलोग्राम तक दूध देने वाले पशुओं को कोई भी ज्यादा (Extra) दाना देने की आवश्यकता नहीं है परन्तु अगर गाय 10 किलोग्राम से ज्यादा और भैंस 7 किलोग्राम से ज्यादा दूध दे रही है तो हरेक 2.5 किलोग्राम पर गाय को और हरेक 2 किलोग्राम पर भैंसों को एक किलोग्राम ज्यादा दाना देना आवश्यक है।

(ग) अगर पशुओं के खाने में हरे चारे की मात्रा अधिक होगी तो दूध में वसा की मात्रा भी अधिक होगी।

(घ) पशु से पूरा दूध उत्पादन के लिए गायों को 5–7 मिनट के अन्दर दूध दूह लेना चाहिए क्योंकि दूध उतारने के लिए एक हारमोन ऑक्सीटोसीन जिम्मेदार होता है और इसकी हाफ लाइफ 5–7 मिनट ही है।

(ङ) दूध दूहने के लिए नियमित अंतराल का होना अत्यावश्यक है। साथ ही साथ नियमित समय से दूहना भी दूध उत्पादन में सहयोग करता है।

(च) दूध दूहने की मुख्यतः तीन विधियाँ हैं (1) अंगूठा दबाकर दूध दुहना (2) चुटकी से दूध निकालना एवं (3) चारों अंगुलियों एवं हथली के बीच में थन को दबाकर दूध दुहना। इन सभी विधियों में चारो अंगुलियों एवं हथेली के बीच में थन को दबाकर दूध दुहने की विधि सर्वोत्तम हैं इससे पशु को कोई क्षति नहीं पहुँचती।

(छ) दूध दुहने का स्थान एवं दूध दुहने वाले आदमी दोनों साफ होने चाहिए। साथ ही दूध दुहने वाले को कोई बीमारी भी नहीं होनी चाहिए एवं समय–समय पर पशुओं के दूध की जाँच भी करवानी चाहिए।

रोचक तथ्य

(क) दूध दुहते समय पशुओं को डराना–धमकाना नहीं चाहिए नहीं तो दूध घट जाएगा।

(ख) दूध दुहने का कार्य 5 से 7 मिनट के अंदर समाप्त हो जाना चाहिए।

(ग) दूध केवल सूखे हाथ से ही दुहा जाना चाहिए, पानी अथवा दूध लगाकर नहीं।

(घ) दूध दुहते समय पशुओं को गन्ध वाला चारा न खिलाया जाये, अन्यथा दूध इस गंध को अवशोषित कर सकता है।

(ङ) गाय एवं दुहिया दोनों की स्वच्छता, शुद्ध दूध उत्पादन के लिए जरूरी है।

(च) 10 किलोग्राम से ज्यादा दूध देने वाले पशुओं को यदि तीन बार दूध दुहा जाए तो दूध उत्पादन को 10–15 प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है।

शुद्ध दूध उत्पादन के लिए आवश्यक तथ्य

(क) पशु का स्वस्थ्य होना एवं उसकी स्वच्छता।

(ख) दुग्धशाला का साफ–सुथरा होना।

(ग) दूध दुहने वाले एवं दूध के बर्तन की साफ–सफाई।

(घ) दूध दुहने की विधि एवं अगर दूध उतारने के लिए बछड़े का प्रयोग होता हो तो उसकी स्वच्छता।

(ङ) पशुओं की समय–समय पर जाँच।

(च) दूध का अच्छी तरह रख–रखाव एवं अतिशीघ्र वितरण

5. गाभिन पशुओं का प्रबंधन

गाभिन पशुओं की उचित देखभाल बहुत ही जरूरी है। गाभिन पशुओं के आवास एवं आहार का प्रबंधन उनके गर्भावस्था की स्थिति के अनुकूल होनी चाहिए। इस समय निम्नांकित बातों का ध्यान रखना जरूरी है –

(क) गाभिन पशुओं को साधारण व्यायाम ही दिया जाना चाहिए, उन्हें न तो ज्यादा दौड़ाया जाय, ना ही उनको मारा जाय, ना ही डराया जाय।

(ख) गाभिन पशुओं को ब्याने से 2 माह पूर्व से दूध निकालना बन्द कर देना चाहिए। यह उसके भ्रूण विकास एवं पशुओं को आराम के लिए जरूरी है।

(ग) सामान्यतः एक गाभिन गाय/भैंस को 30–35 किलोग्राम हरा चारा, 3–4 किलोग्राम सूखा चारा, 2–3 किलोग्राम दाना एवं 50 ग्राम नमक प्रतिदिन दिया जाना चाहिए।

(घ) गायों को 6 महीने के गर्भावस्था के बाद 0.5 से 1 किलोग्राम ज्यादा दाना, उसके भ्रूण एवं शारीरिक रिजर्व जो कि आगे के शारीरिक विकास एवं दूध देने की क्षमता के विकास के लिए दिया जाना चाहिए।

(ङ) ब्याने के 15 दिन पूर्व उसे अलग ब्यात घर में रखा जाना चाहिए। जहाँ कि शान्त, स्वच्छ, जीवाणुरहित एवं बिछावनयुक्त वातावरण हो। इस समय खाने के लिए हल्का आहार एवं पर्याप्त पानी की व्यवस्था होनी चाहिए।

(च) इस दौरान एक आदमी हमेशा गाय की देखभाल के लिए होनी चाहिए।

(छ) गाय, बच्चा जन्म देते समय बहुत ही नर्वस होती है इसलिए किसी भी तरह का डर, मारपीट एवं परेशानी बच्चा एवं माँ दोनों के लिए खतरनाक हो सकती है।

6. साँढ़ एवं भैंसा का प्रबंधन

एक साँढ़ को समूह का आधा कहा जाता है। किसी भी समूह का परफॉरमेन्स साँढ़ की गुणवत्ता पर ही निर्भर करती है। साथ ही किसी भी समूह में ज्यादा गर्भाधान दर के लिए साँढ़ का सही प्रबंधन बहुत ही आवश्यक है। इनके प्रबंधन से संबंधित जानकारी निम्नांकित है। –

(क) शुरुआत में ही बछड़ों को उसके पेडिग्री (Pedigree) एवं विभिन्न शारीरिक गुणों को देखकर चुना जाता है।

(ख) सामान्यतः 15–18 महीने में युवा साँढ़ हल्की सर्विस के लिए तैयार हो जाते हैं। इस समय उन्हें ट्रेनिंग एवं सीमेन (वीर्य) कलेक्शन (Semen collection) के लिए तैयार किया जाता है। इस दौरान सप्ताह में एक बार सीमेन कलेक्शन किया जा सकता है इसी उम्र में उन्हें नाक में रिंग भी पहनाई जाती है एवं नाक में रस्सी एवं साँढ़ होल्डर के द्वारा कंट्रोल करना सिखाया जाता है।

(ग) साँढ़ों के रख–रखाव का सबसे महत्वपूर्ण पहलु उनका व्यायाम है। यह व्यायाम ही उन्हें चुस्त–दुरुस्त एवं स्वस्थ रखता है।

(घ) साँढ़ों को कम से कम 12 वर्ग मीटर का ढँका हुआ क्षेत्र एवं 120 वर्ग मीटर का खुला क्षेत्र चाहिए। उनके कमरे में ही खाने की नाद एवं पीने की नाद की व्यवस्था होनी चाहिए।

(ङ) उन्हें अच्छी गुणवत्ता वाले चारा एवं पर्याप्त मात्रा में दाना खिलाना चाहिए। अगर कुछ उपर से (Additional) 2–3 किलोग्राम दाना मिक्चर दिया जाए तो और भी बेहतर होगा।

(च) नियमित ग्रुमिंग (Grooming) एवं पैरों की देखभाल भी साँढ़ों को चुस्त–दुरूस्त रहने में मददगार होती है।

(छ) बाद के दिनों में साँढों से हम सप्ताह में दो बार सीमेन कलेक्शन ले सकते हैं।

हम देखते हैं कि उत्तम साँढ की मदद से ही उत्तम बछड़े का जन्म हो सकता है जो कि डेयरी फार्म की कामयाबी के लिए बहुत ही जरूरी है। इसीलिए साँढ / भैंसा का उत्तम प्रबंधन जरूरी है।

7. मुर्गी के विभिन्न आयु वर्ग के समूह की देखभाल एवं प्रबंधन

मुर्गियाँ सामान्यतः 18 से 20 सप्ताह की उम्र से अंडे देना प्रारंभ करती है और अगले 52 सप्ताह तक वे अंडे देती रहती है। मुर्गियों से हम उसके बाद भी अंडे ले सकते हैं लेकिन वह किफायती नहीं होता है। ये अंडे 21 दिन के इन्क्यूवेशन अवधि (Incubation period) के बाद चूजे देती है। इन्क्यूवेशन प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों तरीके से किया जा सकता है लेकिन हाल के दिनों में कृत्रिम इन्क्यूवेशन ने बड़े पोल्ट्री फार्म में एक क्रान्ति सी ला दी है और कमोवेश प्राकृतिक इन्क्यूवेशन को समाप्त ही कर दिया है। लेकिन अभी भी प्राकृतिक इन्क्यूवेशन छोटे किसानों द्वारा किया जाता है।

(क) चूजों का प्रबंधन : चूजों के देखभाल एवं प्रबंधन को ब्रुडिंग (Brooding) भी कहते हैं। ब्रुडिंग का समय ब्रायलर में 4 सप्ताह तक एवं लेयर में 6–8 सप्ताह तक माना जाता हे। नये पैदा हुए चूजे पंखों के नहीं होने के कारण शरीर के तापमान को विनियमित (Regulate) नहीं कर पाते हैं इसिलिए उन्हें ठंढ से बचाने के लिए गर्मी दी जाती है जिसे ब्रुडिंग कहते हैं। सही ढंग से ब्रुडिंग के द्वारा हम पोल्ट्री में मृत्युदर घटा सकते हैं। ब्रुडिंग दो तरीके से होते हैं।

(i) प्राकृतिक ब्रुडिंग

इसमें चूजे वाली मुर्गी (Broody hen) का प्रयोग चूजों को गर्मी देने के लिए होता है। एक मुर्गी 15–20 चूजों की ब्रुडिंग कर सकती है।

(ii) कृत्रिम ब्रुडिंग

इसमें सभी वातावरणीय कारणों को जैसे तापमान, आर्द्रता, फर्श पर जगह और वेंटिलेशन को नियंत्रित करके ब्रुडिंग किया जाता है। इसमें एक गर्म करने का स्रोत, परावर्तक (Reflectors) और ब्रुडर गार्ड (Brooder guard) होता है। कृत्रिम गर्मी देने के लिए बिजली, लकड़ी, गैस, मिट्टी का तेल, इन्फ्रारेड प्रकाश, लकड़ी का चुरा आदि का प्रयोग विभिन्न तरीकों में किया जाता है। कृत्रिम ब्रुडिंग कई कारणों से प्राकृतिक ब्रुडिंग से अच्छा है जैसे चूजों को किसी भी मौसम; किसी भी समय में पाल सकते हैं ; एक श्रमिक कई हजार चूजों की ब्रुडिंग कर सकता है; स्वच्छता की स्थिति को नियंत्रित किया जा सकता है; तापमान को नियंत्रित कर सकते हैं और खिलाने की योजना भी तैयार कर सकते हैं।

ब्रुडिंग प्रबंधन (Brooding Management)

ब्रुडर घर को अन्य पाल्ट्री घरों से कम से कम 100 मीटर दूरी पर बनाया जाता है। जिसमें फर्श पर 5 सें0मी0 की गहराई तक लकड़ी, मुंगफली का छिलका, पुआल आदि डाला जाता है। साथ ही यह भीगें नहीं इसका ध्यान रखा जाता है। चूजों को कम से कम 7 वर्ग इंच का ब्रुडर स्पेस / चुजा (Brooder space) दिया जाता है। ब्रुडिंग के लिए सही तापमान का होना बहुत ही जरूरी है। ज्यादा और कम तापमान दोनों ही चूजे की वृद्धि दर को प्रभावित करते हैं और इससे मृत्युदर भी बढ़ जाती है। सही ब्रुडिंग के लिए पहले सप्ताह 95°F (35°C) तापमान रखा जाता है उसके बाद हरेक सप्ताह 5°F तापमान तब तक घटाया जाता है जब तक तापमान 70°F तक न आ जाय। सही वेंटिलेशन से कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, अमोनिया आदि की मात्रा को ब्रुडर घर के अन्दर नियंत्रित कर सकते हैं। ताजी हवा का प्रवेश भी इससे सुनिश्चित होता है तथा लिटर भी सूखी रहती है। गर्मी के स्रोत से चूजे भटक न जाए इसलिए 7–8 दिनों तक चूजा गार्ड का भी प्रयोग किया जता है। पक्षियों को 0–2 सप्ताह तक प्रति चूजा 2.5 सें0मी0 की खाने की जगह (Feeder space) दी जाती है जो बाद में बढ़ाकर 4.5 से0 मी0 तक (2–6 सप्ताह वाले चूजों को) कर दी जाती है। पक्षियों को कभी–कभी एंटीबायोटिक एवं तनाव से बचने के लिए दवाएँ पानी में घोलकर दी जाती है। इस प्रकार हम ब्रुडिंग प्रबंधन अच्छी तरह कर सकते हैं।

(ख) पुलेट्स का प्रबंधन : पुलेट्स एक वर्ष से कम आयु वर्ग वाले मुर्गी को कहते हैं, जो आगे चलकर अंडे देती हैं। यह मुर्गियों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण समय है क्योंकि एक अच्छे लेयर (अंडा देने वाली मुर्गियाँ) के लिए इस समय अच्छा प्रबंधन उसके सही अनुवांशिक क्षमता प्रकट होने के लिए जरूरी है। छोटे मुर्गियों के समूह के लिए ब्रुडर घर को ही ग्रोअर घर (Grower house) के रूप में उपयोग किया जा सकता है किन्तु बड़े समूह के मुर्गियों के लिए एक अलग ग्रोअर घर की आवश्यकता होती है। ग्रोअर घर में फर्श पर जगह, खाने की जगह एवं पीने की जगह क्रमशः 950–2350 वर्ग सें0 मी0, 7.5–12.5 सें0 मी0 एवं 2.0–2.5 सें0 मी0 की जगह / मुर्गी दी जाती है। इस घर में बड़े–बड़े लटकते हुए (Feeder) फीडर एवं वाटरर (Waterer) सही

संख्या में लगाये जाते हैं। रोशनी का प्रबंधन इस घर में बहुत ही आवश्यक है।यह देखा गया है कि 20 सप्ताह तक घटती हुई रोशनी (Decreasing lighting schedule) का प्रबंध बढ़ते हुए मुर्गियों पर अच्छा प्रभाव डालती है। हाल के दिनों में फीड प्रतिबंध (Feed Restriction) को भी बढ़ते हुए मुर्गियां में अपनाया गया है और अच्छा परिणाम देखा गया है। इससे न केवल खाने के खर्च में कमी होती है बल्कि बड़े अंडे और जयादा संख्या में अंडे भी मिलते हैं। ISI (1975) के अनुसार बढ़ते हुए मुर्गियों को 16 प्रतिशत क्रुड प्रोटीन, 2600 किलो कैलोरी / कि0 ग्रा0 ऊर्जा और 8 प्रतिशत क्रुड फाइबर खाने के माध्यम से देना चाहिए। साथ ही परजीवीयों से बचाव के लिए 10, 13, 16 एवं 19 वें सप्ताह में परजीवीनाशक तत्व उन्हें खिलाया जाता है। इस प्रकार हम सही ढंग से पुलेट्स का प्रबंधन कर सकते हैं।

(ग) अंडा देने वाले मुर्गियों (लेयर) का प्रबंधन : लेयर, उन यौन परिपक्व मुर्गियों को कहा जाता है, जिनको अंडा उत्पादन के लिए पाला जाता है। सामान्यतः मुर्गियाँ 18–20 सप्ताह की उम्र से अंडे देना आरंभ करती है और 72 सप्ताह की आयु तक किफायती तरीके से अंडे देती रहती है। लेयर के बेहतर प्रबंधन के लिए 18–20 सप्ताह की आयु में ग्रोअर घर से लेयर घर में ले जाया जाता है। लेयर घर में फर्श पर जगह, खाने की जगह एवं पीने की जगह क्रमशः 1800–2250 वर्ग सें0 मी0 डिप लिटर प्रणाली में और 337–375 वर्ग से0मी0 पिंजरा प्रणाली में; 12–15 से0मी0 और 2.5 से0मी0 प्रति पक्षी जगह दी जाती है। डीप लिटर प्रणाली में 4–5 पुलेट्स पर एक अंडा देने का घोसला रखा जाता है जिससे कि स्वच्छ अंडा प्राप्त होता है। लेयर घर में खाने–पीने की व्यवस्था अच्छे ढंग से की जाती है। व्हाइट लेग हार्न नस्ल की मुर्गियाँ 105–110 ग्राम आहार /दिन /पक्षी खा जाते है। लेयर घर में प्रकाश की व्यवस्था पर अंच्छी तरह ध्यान दिया जाता है। उन्हें कम से कम 14 घंटे प्रकाश प्रतिदिन चाहिए। यह देखा गया है कि सही प्रकाश व्यवस्था से हम 5–10 प्रतिशत ज्यादा अंडा उत्पादन ले सकते हैं। इसीलिए हम कह सकते हैं कि अच्छा अंडा उत्पादन लेने के लिए अच्छा प्रबंधन बहुत ही जरूरी है।

(घ) माँस हेतु पाली जाने वाली मुर्गियों (ब्रायलर) का प्रबंधन : ब्रायलर उन मुर्गियों को कहते हैं जिनको मुख्यतः माँस उत्पादन के लिए पाला जाता है। हाल के दिनों में ब्रायलर फार्मिंग ने एक उद्योग के रूप में अपनी जगह बनाई है इससे जल्दी और ज्यादा आय हो रही है जो किसानों को आकर्षित करती है। ब्रायलर के लिए उस तरह के पक्षियों का चयन किया जाता है जिनका अनुवांशिक और शारीरिक क्षमता, तेज वृद्धि, कम मृत्युदर, जयादा फीड दक्षता (Higher feed efficiency) और अच्छी शारीरिक बनावट के लिए उपयुक्त हो। ब्रायलर के लिए 4 सप्ताह की आयु तक 450 वर्ग से0 मी0 तथा 5–7 सप्ताह की आयु वर्ग के लिए 750–850 वर्ग से0मी0 का फर्श पर जगह चाहिए। यह 6 सप्ताह में 1–1.2 कि0 ग्राम की वजन की हो जाती है और यही बाजार ले जाने के लिए उपयुक्त समय भी है। ब्रायलर को दो तरीके का राशन, ब्रायलर स्टाटर (5 सप्ताह तक) और ब्रायलर फीनिशर (बिकने तक) खिलाया जाता है। ब्रायलर स्टाटर में 23 प्रतिशत प्रोटीन और 2800 किलो कैलोरी उर्जा होती है वहीं ब्रायलर फीनिशर में 20 प्रतिशत प्रोटीन और 2900 किलो कैलोरी ऊर्जा होती है। इस समय उन्हें ज्यादा ऊर्जा वाले राशन खिलाए जाते हैं ताकि वह ज्यादा वजन प्राप्त कर सके।

अतः हम देखते हैं कि विभिन्न वर्ग के पशुओं और विभिन्न आयुवर्ग के मुर्गियों की अच्छी देखभाल एवं प्रबंधन पर ही सफल डेयरी व्यवसाय और मुर्गीपालन व्यवसाय निर्भर करती है। अच्छी देखभाल और प्रबंधन से ज्यादा से ज्यादा और उत्तम गुणवत्ता वाले उत्पादन लिए जा सकते हैं।

हमने सीखा

- पशुओं की सही अनुवांशिक क्षमता के उपयोग के लिए सही आहार एवं उत्तम देखभाल जरूरी है।
- गाभिन पशुओं की विभिन्न चरणों में देखभाल उनसे उत्तम उत्पादन एवं उत्तम बाछा / बाछी की उत्पत्ति के लिए जरूरी है।
- गाभिन पशुओं मे ब्याने की अनुमानित तिथि से 2 माह पूर्व से दूध निकालना बन्द कर देना चाहिए।
- बच्चों में सही समय पर नाल काटना, खीस पीलाना, सींग हटाना आदि बेहतर प्रबंधन के लिए जरूरी है।
- खीस में इम्यूनोग्लोबुलिन्स होते हैं जो बछड़ों को रोगों से लड़ने में सहायता प्रदान करते हैं।
- बाछियों में गर्मी की पहचान जितनी जल्दी होगी, उतनी जल्दी गर्भाधान होगा और उतनी ही जल्दी दूध उत्पादन शुरू हो जाएगा।

- पशु से पूरा दूध उतपादन के लिए गायों/भैंसों को 5–7 मिनट के अन्दर दूध दूह लेना चाहिए।
- दूध दूहने की सभी विधियों में चारों अंगुलियों एवं हथेली के बीच में थन को दबाकर दूध दूहने की विधि सर्वोत्तम है।
- नियमित ग्रुमिंग एवं पैरों की देखभाल साँढ़ों को चुस्त–दुरूस्त रखने में मददगार होती है।
- मुर्गियाँ सामान्यतः 18 से 20 सप्ताह की उम्र से अंडे देना प्रारंभ करती है और अगले 52 सप्ताह तक वे अंडे देती रहती है।
- कृत्रिम ब्रुडिंग में पहले सप्ताह 95°F तापमान रखा जाता है उसके बाद हरेक सप्ताह 5°F तापमान तब तक घटाया जाता है जब़ तक तापमान 70°F तक न आ जाए।
- लेयर घर में कम से कम 14 घंटे प्रकाश प्रतिदिन चाहिए।

अभ्यास

1. खाली स्थानों को भरिए :

(क) एक गाय सामान्यतः .....दिनो में बच्चा जन्म देती है।

(ख) खीस में ..... पाए जाते हैं जो पशुओं को रोगों से रोकथाम में मदद करते हैं।

(ग) दूध दुहने का कार्य ..... मिनट के अन्दर हो जाना चाहिए और इसके लिए ..... हार्मोन जिम्मेदार होता है।

(घ) ब्याने के ..... दिन पूर्व पशुओं को ब्यात घर में ले आना चाहिए।

(ङ) सामान्यतः मुर्गियाँ ..... सप्ताह की उम्र से अंडे देना प्रारंभ करती है।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

(क) बछड़ों में खीस पिलाने की उपयोगिता पर चर्चा करें।

(ख) गाभिन पशुओं की देखभाल कैसे करे? इस पर टिप्पणी लिखें।

(ग) दूध देती गायों का बेहतर प्रबंधन कैसे हो? इसके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालें।

(घ) साँढ़ को समूह का आधा क्यों कहा जाता है? इस पर टिप्पणी लिखें।

(ङ) कृत्रिम ब्रुडिंग से क्या समझते हैं? इसकी तुलना प्राकृतिक ब्रुडिंग से करें।

*****

6.7. पशुओं एवं कुक्कुटों का आहार प्रबंधन

पाचन तंत्र के आधार पर पशुओं को दो भाग में बाँटा जाता है –

1. **गैर रोमन्थि युक्त पशु (Non-ruminant) :** इन पशुओं में **समान्य आमाशय रहता** है एवं पाचन एन्जाइम के **द्वारा होता है। इसके** चलते पोषक तत्वों के पाचन की कार्य कुशलता अधिक **रहती है परन्तु ये रेशे** को अपेक्षाकृत कम पचा **सकते हैं।** उदाहरण कुक्कुट, सूकर, कुत्ता आदि

2. **रोमन्थि युक्त पशु (Ruminant) :** इन पशुओं में आमाशय चार खंड में विभक्त रहता है (1) रेटिकुलम (2) रूमेन (3) ओमेजम एवं (4) एबोमेजम। पाचन क्रिया किण्वण आधारित है। किण्वण की प्रक्रिया रूमेन में होती है। किण्वण सूक्ष्मजीवीयों के चलते होता है। इसका सबसे ज्यादा लाभ रेशे के पाचन में होता है। प्रकृति के इस देन के कारण हमलोग घास/भूसा/कृषि उत्पाद (खल्ली/चोकर) से अमृत रूपी दूध प्राप्त करते हैं। उदाहरण गाय, भैंस, भेड, एवं बकरी।

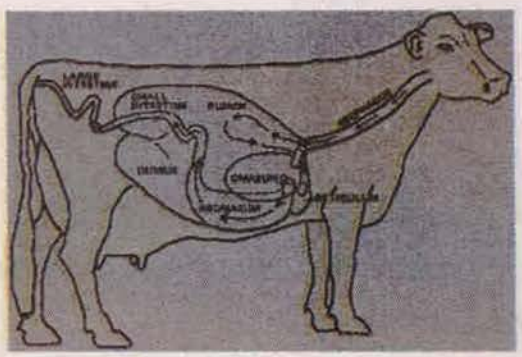

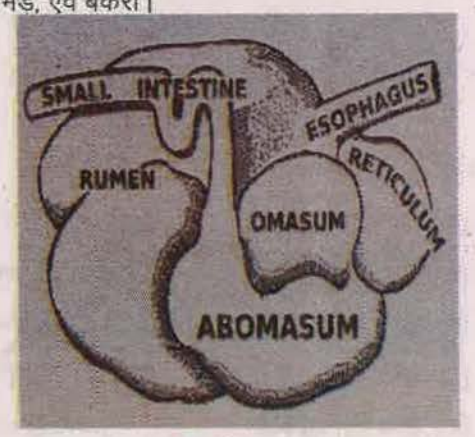

संतुलित आहार किसी भी पशु वर्ग के लिए वह आहार है, जिसमें पशुओं में सामान्य शारीरिक **क्रियाओं के निष्पादन के** लिए आवश्यक सभी खाद्य पदार्थ उचित मात्रा में उपलब्ध हो। अर्थात पशुओं को उनके शरीर **के पोषण तथा उत्पादन** के लिए जो पौष्टिक तत्व उन्हें जितनी मात्रा में चाहिए, वह उन्हें आहार से उपलब्ध हो।

दूध उत्पादन के लिए दूधारू पशुओं को संतुलित आहार की आवश्यकता एक निर्विवाद सत्य है। **किसी भी गव्य इकाई में आहार** के मद में खर्च भी सबसे ज्यादा होता है, जो कि 60–70 प्रतिशत के बीच में आता है। अतः एक **गव्य इकाई को आर्थिक रूप से** सफल संचालन हेतु भी पशुओं को संतुलित आहार खिलाने की आवश्यकता है।

दूध उत्पादन को बढ़ाने के लिए आजकल संकर प्रजनन कार्यक्रम राज्य में तेजी **से चल** रहा है। उत्पादन क्षमता को **बनाए रखने** के लिए संतुलित पौष्टिक आहार की आवश्यकता होती है। संतुलित पौष्टिक **आहार** से पशुओं को निम्नलिखित **पोषक तत्व** शरीर में मिलता है।

1. **कार्बोहाइड्रेट/शर्करा : यह ऊर्जा का प्रमुख स्रात है।**
2. **प्रोटीन : यह शरीर की कोशिकाएँ एवं उत्तकों के टूट फूट का निर्माण होता है एवं उनके वृद्धि में सहायक होता है।**
3. **वसा/फैट : यह भी ऊर्जा का स्रोत है। इसके अतिरिक्त कोशिकाएँ की स्वास्थ्य में सहायक है।**
4. **विटामिन :** शरीर को अनेकों **प्रकार के विटामिन जैसे** 'ए', 'डी', 'इ', 'के', एवं 'बी' कम्पलेक्स एवं 'सी' की आवश्यकता विभिन्न कार्यों के लिए पड़ती है।
5. **खनिज एवं लवण : इनके भी बहुमुखी आवश्यकता शरीर को पड़ती है। इनमें प्रमुख कैल्शियम, फॉस्फोरस, लौह तत्व, कॉपर** इत्यादि है।
6. **जल :** यह शरीर में चयापचय **में सहायक है, जिसके चलते टॉक्सिन का भी उत्सर्जन होता है।** साथ ही, शरीर के तापमान को भी संतुलित रखता है।

इन सभी पोषक तत्वों की शारीरिक आवश्यकता के अनुसार संतुलित करके देना बहुत जरूरी है। पशुओं के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता के तीन प्रमुख कारण है –

1. जीवन निर्वहन पोषण के लिए आवश्यकता, 2. उत्पादन के लिए आवश्यकता, 3. प्रजनन के लिए आवश्यकता

वैज्ञानिक आधार पर संतुलित आहार खिलाने के लिए भा0 कृ0 अ0 प0 (ICAR) द्वारा आहार की आवश्यकता समय–समय पर की जाती है।

नीचे सामान्य ज्ञान के आधार पर पशुओं को संतुलित आहार खिलाने का तरीका बताया जाएगा।

नवजात बछड़ों का आहार

नवजात बछड़ों को 4 से 12 घंटे के अन्दर प्रथम बार फ्रेनस (कोलोस्ट्रम) देना आवश्यक है। फिर तीन दिनों तक दिन में दो बार देना चाहिए। यह बछड़ों के वजन के करीब 1/10वाँ भाग देना चाहिए। फेनुस शरीर को प्रतिरोधक शक्ति देती है। पहली बार फेनुस देने से नवजात के पेट से मल निकालने में भी मदद करता है। तीन रोज के बाद उबले दूध की आवश्यक मात्रा गुनगुना कर दिन में दो बार देना चाहिए। 3–5 सप्ताह एवं 5–8 सप्ताह तक शरीर के वजन के 1/15वाँ भाग एवं 1/20वाँ भाग क्रमशः देना चाहिए।

बछड़े को 10–15 दिनों के अन्दर से दूध के साथ–साथ हरा चारा या अच्छी सूखी घास और बछड़े का दाना आवश्यकतानुसार देना चाहिए। बछड़े को दाना का उदाहरण तालिका–1 में देंखे।

छह माह तक के बछड़े का आहार

यह विकास का उम्र है। अतः इस उम्र में समुचित रूप से संतुलित पौष्टिक आहार खिलाने से उस पशु से हम अधिकतम उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर इनके आहार में एक से डेढ़ किलो तक दाने का मिश्रण और सूखा एवं हरा चारा भरपूर दें।

छह माह से प्रौढ़ होने तक का आहार

इस आयु वर्ग को दाना का मिश्रण तालिका–2 के अनुसार खिलाना चाहिए। प्रत्येक बछड़े को प्रतिदिन दो किलो दाने का मिश्रण देना चाहिए। मक्का, ज्वार आदि के हरा चारे, सूखी घास अथवा साइलेज के रूप में जितना हो पशु चारे खिलाना चाहिए। परन्तु छः माह के उम्र के बाद जैसा चारा खिलाएँ उसके अनुसार दाना मिश्रण की मात्रा कम की जा सकती है। अच्छे दलहनीय घास जैसे बरसीम, लोबिया आदि भर पेट खिलाने पर आधा किलो से एक किलो तक दाना का मिश्रण काफी है, जबकि मक्का, जौ आदि चारे के साथ एक से डेढ़ किलो दाना मिश्रण प्रतिदिन देना चाहिए। यदि पशु केवल भूसा पर है तो प्रति पशु दो किलो दाना मिश्रण प्रतिदिन देना चाहिए।

यदि बाछियों को उपर्युक्त तालिका के अनुसार खिलाया जाय तो वह अपनी जाति के अनुसार ढ़ाई से तीन साल की उम्र में पहला बच्चा देगी, जिससे गव्य इकाई को आर्थिक लाभ होगा। इसी प्रकार बछड़ों को संतुलित पौष्टिक आहार देकर उनकी जाति के अनुसार ठीक समय पर कार्य करने के लिए तैयार किया जा सकता है।

दुधारू गायों एवं भैंसों की आहार तालिका

दुधारू पशुओं की उत्पादन क्षनता का पूर्ण आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें संतुलित पौष्टिक आहार उचित मात्रा में दिया जाय। जैसा कि हम जानते हैं कि पशुओं को आहार तीन प्रमुख कार्य के लिए जरूरी है – (1) जीवन निर्वाह के लिए एवं (2) उत्पादन के लिए – इसमें दूध उत्पादन, कार्य करने की आवश्यकता, वृद्धि आदि सभी आते हैं। (3) गर्भावस्था के लिए।

औसतन एक वयस्क पशु (गाय/भैंस) को 4–6 किलोग्राम सूखा चारा एवं 1.5–2.0 किलोग्राम दाना का मिश्रण जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक है। 1.0 किलोग्राम दाना मिश्रण प्रति 2.5 किलोग्राम दूध उत्पादन के लिए निर्वहन आवश्यकता के अतिरिक्त देना चाहिए। इसके अतिरिक्त गर्भावस्था के अंतिम तीन माह में 1.5 किलोग्राम दाना मिश्रण देना पड़ता है। इससे नवजात बछड़े स्वस्थ एवं गाय का दूध उत्पादन भी अधिक रहता है।

सुविधा के लिए दूधारू पशुओं के जीवन निर्वाह हेतु कुछ पौष्टिक आहार प्रमांक एक औसत 400 कि॰ग्रा॰ वजन की गाय या भैंस के लिए नीचे दी जाती है।

1. केवल 25 कि॰ग्रा॰ हरा चारा
2. 10 कि॰ग्रा॰ हरा चारा तथा 5 कि॰ ग्रा॰ गेहूँ का भूसा
3. करीब 7 कि॰ग्रा॰ गेहूँ का भूसा और पौन किलो मुँगफली का खल्ली या एक किलो तीसी की खल्ली।

इसके अतिरिक्त पशुओं की दूध उत्पादन क्षमता के अनुसार उसे उत्पादन आहार भी देना जरूरी है। उस हेतु प्रति ढाई किलो दूध उत्पादन पर एक किलो दाने का मिश्रण एवं संकर नस्ल के गायों एवं भैंसों के लिए प्रति दो किलो दूध उत्पादन पर एक किलो दाने का मिश्रण खिलाना चाहिए।

इसके साथ ही पशुओं को यथासंभव पूरे वर्ष भर इसे चारा मिलना चाहिए ताकि उनकी विटामिन ए की आवश्यकता पूरी होती रहे। गायों के गर्भावस्था के आखिरी तीन महीनों में लगभग सवा किलो एवं संकर नस्ल के गायों को पौने दो किलो दाना मिश्रण अतिरिक्त देना चाहिए।

साँढ़ के लिए आहार

एक गव्य इकाई के लिए साँढ़ की आवश्यकता भी है। उन्हीं पर भविष्य के पशु निर्भर करते हैं। साँढ़ों को संतुलित पौष्टिक आहार खिलाना उनके प्रजनन शक्ति को बनाए रखने के लिए जरूरी है। इन्हें भर पेट सूखा तथा हरा चारा के साथ दो से ढाई किलो दाने का मिश्रण प्रतिदिन खिलाना चाहिए। हरा चारा अधिक से अधिक खिलाए।

बैलों के लिए आहार

हमारे कृषि प्रधान देश में बैलों की आर्थिक भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण है। अतः उनसे अधिकतम कार्य लेने के लिए भरपेट हरा चारा तथा सूखा चारा खिलाने के साथ कम से कम डेढ़ से दो किलो दाने का मिश्रण प्रतिदिन खिलाना चाहिए।

इसके साथ–साथ कम से कम एक मुठ्ठी नमक प्रतिदिन गाय, भैंस, साँढ़, बैल को देना चाहिए और पेय जल की उपलब्धि होना चाहिए।

तलिका–1

बछड़ों के लिए दाना का मिश्रण

(अ)	मूँगफली की खल्ली	–	30 भाग
	मकई चूर्ण	–	50 भाग
	चावल का खुदी	–	10 भाग
(ब)	तीसी की खल्ली	–	30 भाग
	स्कीम मिल्क पाउडर	–	20 भाग
	बारली का चूर्ण	–	50 भाग
(स)	बारली का चूर्ण	–	50 भाग
	मूँगफली खल्ली	–	30 भाग
	गेहूँ की चोकर	–	8 भाग
	मछली चूर्ण / स्कीम दूध पाउडर	–	10 भाग
	खनिज मिश्रण	–	2 भाग

तालिका–2

वयस्क पशु के लिए दाने का मिश्रण का उदाहरण

(1)	गेहूँ का चोकर	–	50 भाग
	रेपसीड / सरसों का खल्ली	–	30 भाग
	चना का चुन्नी	–	20 भाग
(2)	तीसी की खल्ली	–	35 भाग

	चना का चून्नी	–	40 भाग	(4)	मूँगफली की खल्ली	–	15 भाग
	गेहूँ का चोकर	–	25 भाग		चना	–	40 भाग
(3)	तिल खल्ली	–	20 भाग		मकई	–	40 भाग
	कुर्थी	–	40 भाग		चना का भूंसी	–	5 भाग
	ज्वार	–	20 भाग				
	चावल का चोकर	–	10 भाग	(5)	मकई / गेहूँ चोकर	–	1 भाग
	चना का भूँसी	–	10 भाग		चोकर	–	1 भाग
					मूँगफली / तीसी खल्ली	–	1 भाग

(इस मिश्रण का आधा अर्थात् 1.5 किलो ग्राम गाय को खिलाएँ)

कुक्कुट / मुर्गी का संतुलित आहार

मुर्गी पालन आज व्यवसाय का रूप ले चुका है। मुर्गी पालन मांस एवं अंडा उत्पादन के लिए किया जाता है। मुर्गी आहार से बहुत ज्यादा प्रभावित होता है। एक दिन में ही आहार का प्रभाव उनमें दिख जाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि कुक्कुट का पाचन तंत्र सामान्य आमाशय वाले (Simple stomach) पशुओं के श्रेणी में आता है।अतः इनके आहार में विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

इनके जीवन के हर आयु वर्ग यथा, चूजा, पुलेट, लेयर, ब्रायलर के लिए संतुलित आहार देना आवश्यक है ताकि अधिक से अधिक मांस एवं अंडा का उत्पादन कम से कम लागत में हो सके। निम्नलिखित तालिका के अनुरूप मुर्गियों को पोषक तत्व खिलाना चाहिए।

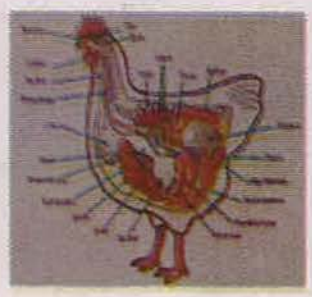

तालिका – पोषक तत्व की तालिका

पोषक तत्व	ब्रायलर		लेयर		
	स्टॉटर फेज (0–4 सप्ताह)	फिनिसर फेज (4–6 सप्ताह)	चिक फेज (0–8 सप्ताह)	ग्रोअर फेज (8–20 सप्ताह)	लेयर फेज (20 सप्ताह से आगे)
जल % (अधिकतम)	11	11	11	11	11
ऊर्जा (ME kcai /kg)	2800	2900	2600	2500	2600
प्रोटीन %	23	20	20	16	18
रेशा % (अधिकतम)	6	6	7	8	8
कैल्शियम %	1.2	1.2	1.0	1.0	3.0
फासफोरस %	0.5	0.5	0.5	0.5	0.5

मुर्गियों का दाना मिश्रण बनाने में आवश्यक पोषक तत्वों के अतिरिक्त दस आवश्यक अमीनो अम्ल एवं दो आवश्यक वसीय अम्ल भी मिल जाय जिसका विशेष ध्यान रखना पड़ता है। इसे प्राप्त करने के लिए पशु स्रोत से प्रोटीन आवश्य खिलाये। लेयर्स के दाना में कैल्शियम की मात्रा का भी ध्यान रखना है। इसके लिए चुना पाउडर, अस्थि चूर्ण आदि उत्तम स्रोत है।

दाना मिश्रण की तालिका

तालिका –1 ब्रायलर का दाना मिश्रण

दाना स्रोत	स्टॉटर		फिनिशर	
	1	2	1	2
मकई/बाजरा/गेहूँ	44.5	57.1	45.3	65.1
चवल कुंडा	10	–	20	–
मुँगफली खल्ली	15	–	9.5	–
सूर्यमुखी खल्ली	15	15	9.5	12
सरसो खल्ली	–	10	–	10
मछली चूर्ण	6	6	9	5
मीट मिल	6	7	3	5
सिल्क वर्म प्यूपा मिल	–	3	–	1.2
पशु वसा/ लार्ड	2	1	2	–
अस्थि चूर्ण	0.75	–	1.1	0.6
चुना पाउडर	0.4	0.5	–	0.6
नमक	0.25	0.3	0.5	0.4
मिनरल मिक्सचर	0.1	0.1	0.1	0.1

तालिका –2 लेयर् का दाना मिश्रण

दाना स्रोत	स्टॉटर		ग्रोअर		लेयर	
	1	2	1	2	1	2
मकई/बाजरा/गेहूँ।	52.7	48.8	41.0	45.0	30.8	55.0
चवल कुंडा	20	17	40	33.4	35.0	10.9
मुँगफली खल्ली	14	11	11	10	–	20
सूर्यमुखी खल्ली	–	10	–	–	11.5	–
सरसो खल्ली	–	–	–	–	11.5	–
मछली चूर्ण	7.0	12.0	6.0	5.0	4.0	7.0
मीट मिल	–	–	–	–	–	–
सिल्क वर्म प्यूपा मिल	4	–	–	4	–	–
पशु वसा/ लार्ड	–	–	–	–	–	–
अस्थि चूर्ण	1.0	0.7	1.0	2.0	1.0	1.5
चुना पाउडर	0.7	–	0.5	–	5.6	5.0
नमक	0.5	0.4	0.4	0.5	0.5	0.5
मिनरल मिक्सचर	0.1	0.1	0.1	0.1	0.1	0.1

हमने सीखा

- सामान्य पशुओं में आहार का पाचन एन्जायम के द्वारा होता हे।
- पागुर करने वाले पशुओं में किण्वण प्रधान पाचन तंत्र है क्योंकि इनका आमाश्य चार भागों में विभक्त है।
- निम्न कोटि के रेशा प्रधान आहार पागुर करने वाले पशु पचा लेते हैं।
- संतुलित आहार से पशुओं को आवश्यक सभी पोषक तत्व चौबीस घंटे/एक दिन के लिए मिलना चाहिए।
- पशुओं को आहार की आवश्यकता तीन प्रकार की है – जीवन निर्वहन, उत्पादन, एवं प्रजनन।
- तीनों आवश्यकता के लिए विभिन्न पोषक तत्व विभिन्न मात्रा में खिलाना पड़ता है, जिसके लिए वैज्ञानिक तालिका भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा उपलब्ध है।
- नवजात पशु को फेनुस पिलाना अति आवश्यक है जो उनके वजन का 1/10 वाँ भाग होना चाहिए।
- बढ़ते बछड़ों एवं दुधारू पशुओं को उचित मात्रा में प्रोटीन एवं ऊर्जा मिलना जरूरी है।
- दाना मिश्रण में कई तरह का दाना मिला कर बनाते हैं, ताकि 15 प्रतिशत प्रोटीन एवं 70 प्रतिशत टी0 डी0 एन0 मिल सके।
- हरा चारा भी खिलाना जरूरी है। ताकि कैरोटिन मिल सके।
- मुर्गियों के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता अलग–अलग है। इसे पूरा करने पर अधिकतम माँस /अंडा उत्पादन होगा।

अभ्यास

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

(क) पाचन तंत्र के आधार पशु को ..... भागों में बाँटा गया है।

(ख) संतुलित आहार से पशुओं के सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में ..... घंटे के लिए मिलता है।

(ग) पशुओं के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता ....., ... एवं ..... के लिए है।

(घ) नवजात बछड़ों को उसके शरीर के वजन के ..... भाग फेनुस पिलाते हैं।

(ङ) जीवन निर्वाहन के लिए ..... कि0 ग्रा0 दाना मिश्रण खिलाते हैं।

2. बहुविकल्प प्रश्न

1. रूमेन किसका भाग हे।

   (क) पक्वाशय (ख) आमाशय (ग) यकृत (घ) कुछ भी नहीं

2. रूमेन में किण्वण से रेशा के पचने में क्या होता है।

   (क) अधिक पाचन (ख) कम पाचन (ग) कुछ भी नहीं

3. दाना मिश्रण बनाने में कितनी संख्या में दाना लेते हैं।

   (क) एक (ख) दो (ग) कम से कम तीन (घ) पाँच या अधिक

4. प्रजनन की आवश्यकता पूरा करने के लिए दाना मिश्रण देते हैं।

   (क) 1.5 किलो (ख) 2.5 किलो (ग) कुछ भी नहीं

5. मूँगफली की खल्ली में प्रोटीन की मात्रा होती है।

(क) 60 प्रतिशत (ख) कुछ भी नहीं (ग) 40 प्रतिशत

3. निम्न स्तम्भों का मिलान करें

स्तम्भ 'क'	स्तम्भ 'ख'
(i) जुगाली करने वाले पशु	(i) बछड़ा
(ii) किण्वण	(ii) गैर–रोमन्थि युक्त पशु
(iii) फेनुस	(iii) ऐन्जाइम
(iv) कुक्कुट	(iv) रूमेन
(v) पाचन	(v) गाय

4. परिभाषित करें :

(i) रोमन्थि युक्त पशु (ii) जीवन निर्वाहन की आवश्यकता (iii) दाना मिश्रण

(iv) संतुलित आहार (v) बछड़े को फेनुस

परियोजना कार्य

(क) नवजात बछड़ों को दूध पिलाने की तालिका।

(ख) बछड़े, दूधारू गाय, माँस/अंडा देने वाली मुर्गियों के लिए आहार तालिका।

*****

6.8 पशुओं का चारा संरक्षण

सर्वविदित है कि दुधारू पशुओं को सालों भर अच्छा तथा पौष्टिक चारा मिलना चाहिए। हमारे बिहार में सूरज की रोशनी और मिट्टी एवं जलवायु इतनी अच्छी है कि यदि सिंचाई की समुचित व्यवस्था हो तो सालों भर हरा चारा का उत्पादन कर सकते हैं। परन्तु वर्ष के कुछ महीनों में चारे इतनी मात्रा में पैदा होती है कि उसे काटकर संरक्षण नहीं करने पर उनमें पोषक तत्वों की कमी आ जाती है। साथ ही साथ साल के कुछ महीनों में चारे की भारी कमी देखने में आती है। जुलाई एवं अगस्त (खरीफ मौसम) और मार्च (रबी मौसम) में चारा की उपलब्धता अधिक होती है तथा इसके विपरीत अक्टूबर, नवम्बर और मई तथा जून महीनों में चारे की कमी रहती है। आजकल ऐसी तकनीक उपलब्ध है कि जब चारा अधिक मात्रा में उपलब्ध हो तो उसे संरक्षित कर ले और जब चारा की कमी हो तो उसे पशुओं को खिलाकर दुग्ध उत्पादन में वृद्धि की जा सकती हैं। विदेशों में जैसे अमरिका, कनाडा, यूरोप आदि जहाँ छः माह से अधिक बर्फ जमी रहती है, संरक्षण किये हुए चारे जैसे 'हे' (Hay) तथा साइलेज (Silage) पर निर्भर करते हैं। हमारे बिहार में सूखा एवं बाढ़ की स्थिति में तथा चारे के कमी वाले समय (Lean period) में चारा संरक्षण द्वारा ('हे' एवं साइलेज का उपयोग कर) दुग्ध के उत्पादन की वृद्धि कर सकते हैं।

'हे' (Hay) या कड़वी

पशुपालक सूखे चारे काफी भाग में खिलाते हैं लेकिन इसे 'हे' नहीं कह सकते हैं क्योकि 'हे' बनाने में चारे के पोषक मूल्य में हरे चारे की अपेक्षा अधिक गिरावट नहीं आनी चाहिए। 'हे' बनाने के उद्देश्य यही होता है कि हरे चारे से इतना पानी निकाल दिया जाये कि वह किण्वन या फफूंद (Fungus) रहित अवस्था में लम्बे समय तक सुरक्षित रह सके। ऐसा पाया गया है कि यदि 'हे' में नमी की मात्रा 13–14 प्रतिशत अधिक पाया गया तो भंडारण में विभिन्न प्रकार की समस्या उत्पन्न हो जाती है। एक तो फफूंदी (fungus) पैदा हो सकती है या कभी–कभी फफूंदी के द्वारा इतनी अधिक उष्मा पैदा होती है कि भंडारित 'हे' में आग लग जाती है। इस क्रिया को तत्कालीन दहन (Instaneous combustion) की क्रिया कहते हैं। 'हे' बनाते समय इस बात पर ध्यान देते हैं कि कम से कम पोषक तत्व नष्ट हो । यदि फसल जल्दी काटते हैं तो उपज कम मिलती है और देर से काटने पर अधिक परिपक्वता (Maturity) के कारण पोषक तत्वों में कमी आती है।

हरे चारे फसल को उपयुक्त पौष्टिक अवस्था में काटकर 13–15 प्रतिशत नमी पर सुखाकर इस प्रकार से संरक्षित करते हैं कि इसमें विद्यमान पत्तियाँ व पोषक तत्व, हरा रंग (कैरोटीन) एवं प्रोटीन का नुकसान न हो। इस प्रकार से संरक्षित हरे चारे को 'हे' अथवा कड़वी कहते हैं। जिसे जानवरों को खिलाने के लिए उपयोग करते हैं।

(Hay can be defined as the conversion of green forage into dry form without affecting the quality of the orginal material)

'हे' बनाने के लिए उपयुक्त फसलें है .

वैसे चारे फसल जिनके तना पतले होते हैं उसे 'हे' बनाने में प्रयोग किये जाते हैं।

लूर्सन की फसल

1. **फलीदार फसले (Leguminous crops) :**

लूसर्न (रिजका), बरसीम, लोबिया फलीदार फसल 'हे' बनाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है। सामान्य रूप से फलीदार फसलों को पुष्पावस्था से प्रारम्भ से लेकर मध्य तक 'हे' बनाने के काटना चाहिए।

2. **दाने वाले फसलें (Cereals) :**

जई, बाजरा व ज्वार 'हे' बनाने के लिए सर्वोतम मानी जाती है। इन फसलों को पुष्पावस्था में काटना चाहिए ।

बरसीम की फसल

3. **घासें (Grasses) :** दूब (Cynodon dactylon) (सायनोडान डैक्टिला) चारा वाली घासों में 'हे' बनाने के लिए सर्वोत्तम मानी गई है। संकर नेपियर से भी 'हे' बनाया जा सकता है। संकर नेपियर को पूर्ण पुष्पावस्था के आने के पहले कटाई कर लेनी चाहिए।

'हे' बनाते समय ध्यान देने वाली आवश्यक बाते :

1. फसल की कटाई उचित अवस्था में करना चाहिए।
2. कटाई के बाद पौधों को चारा काटने वाली मशीन से छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लेने से सुखाना सरल हो जाता हैं।
3. काटे गये चारे को पतली परतों में छायादार स्थान पर फैलाकर सुखाना चाहिए सूर्य की सीधी किरण से सुखाने से चारे का हरा रंग (Carotene) नष्ट हो जाता है व 'हे' की पौष्टिकता घटती है।
4. चारे की कुट्टी को सुखाते समय 2–3 बार पलटना चाहिए जिससे की नीचे का गीला चारा ऊपर आकर सूख जाए। रात के समय चारे को समेट कर शंकु (Cone) आकार का ढेर बना देने से ओस अथवा वर्षा होने पर सम्पूर्ण चारा भींगने से बच जाता है।

लोबिया की फसल

5. मौसम के अनुसार हरे चारे को 15 प्रतिशत नमी तक सूखने में 2–3 दिन का समय लग सकता है जब चारे अपेक्षित नमी के स्तर तक सूख जाए तो इसे सावधानीपूर्वक उठाकर किसी सूखे स्थान में भंडारण हेतु रखना चाहिए।
6. यदि 'हे' की मात्रा अधिक हो तो सुखाने के बाद चारे को दबाकर गाँठों के रूप में परिवर्तित किया जाता है जिससे भंडारण में कम स्थान की आवश्यकता पड़े।
7. जहाँ पर चारे की महीन टुकड़ों में कटाई के पश्चात 'हे' बनाना संभव न हो वहाँ समूचे पौधों को सुखाकर ढीले बंडल बनाकर भंडारण हेतु ढेर के रूप में रखना चाहिए। कुछ समय पश्चात इस प्रकार रखे गय 'हे' की ढेर को ऊपर से दबाना चाहिए ताकि कम स्थान में अधिक चारा रखा जा सके।

अच्छे 'हे' के गुण –

1. जब फसल में फूल आ जाए तो कटाई करनी चाहिए। इसमें पाचक पोषक तत्व काफी मात्रा में सुरक्षित रहेगा और चारे में लिग्निन की मात्रा सीमीत रहने के कारण पाचन पर प्रभाव नहीं पड़ेगा।
2. हरे तथा मुलायम चारे में प्रति कि0 ग्रा0 1500 ई0 यू0 विटामिन होता है। यह विटामिन 'हे' के हरेपन पर निर्भर करता है। ऐसे विधि से 'हे' बनाए कि हरापन बना रहे।
3. जहाँ तक संभव हो पत्तियाँ झड़ने नहीं पाये। इसके लिए चारे के गाँठों में बांधकर सुरक्षित रखने से तना तथा अधिक पत्तियाँ साथ रखने में सहायता मिलती है।
4. 'हे' में से अपक्षालन (Leaching) या विरंजन (Bleaching) क्रिया द्वारा भी तत्व नष्ट होते हैं। इस प्रकार 'हे' जितना हरा होगा उसमें उतनी ही कैरोटीन की मात्रा अधिक होगी। इसलिए विरंजन के प्रभाव से 'हे' को बचाना आवश्यक है।
5. खर–पतवार को चारे से अलग करके 'हे' बनाना चाहिए। यदि हो सके तो ऐसे फसल को चुनना चाहिए जिसमें खर–पतवार न हो।
6. धूल से बचाव आवश्यक है, तथा अधिक नमी वाले स्थान पर 'हे' को कभी भी नहीं रखना चाहिए।
7. जब पशु को खिलाया जाय तो 'हे' में से ताजगी की गंध आनी चाहिए। फफूंदी आदि न हो।

साइलेज (Silage)

हरे चारे को सुरक्षित रखने की एक और विधि, 'साइलेज', हरे चारे का किण्वीकृत पदार्थ होता है। ऑक्सीजन रहित वातावरण में भंडारित हरे चारे में निहित शर्करा (कार्बोहाइड्रेट) के किण्वन से लैक्टिक अम्ल (Lactic Acid) (जो दही में भी पाया जाता है) में परिवर्तित हो जाती है जिससे कि चारे में सड़न की क्रिया प्रतिपादित करने वाले जीवाणु व फफूंद क्रियाशील नहीं हो पाते तथा पोषक तत्वों का विघटन भी नहीं हो पाता है। हरे चारे को साइलेज के रूप में परवर्तित होने में लगभग ढाई से तीन माह का समय लग जाता है।

(Silage is a fermented feed resulting from the storage of high moisture crops usually green forages under anaerobic conditions in a structure called "Silo").

साइलेज बनाने के लिए हरे चारे की उचित अवस्था में कटाई कर उसे 70–75 प्रतिशत नमी तक सुखाते हैं। इसके बाद चारा काटने वाली मशीन पर 3–5 सें0 मी0 के छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है ताकि कम स्थान में वायु रहित वातावरण में भंडारित किया जा सके। वायु रहित वातावरण में हरे चारे का भंडारण, चारे को सड़ने व फफूंद लगने से बचाता है तथा शर्करा अन्य पोषक तत्वों में सुरक्षित रहते हैं, जिससे उच्च किस्म का बढ़िया साइलेज प्राप्त होता है।

साइलेज बनाने के कई लाभ है।

1. जब 'हे' बनाने में कठिनाई होती है (सूरज की किरणें उपलब्ध न हो) तो अच्छा साइलेज बनाया जा सकता है।
2. ज्वार, बाजरा, मक्का जैसी फसलों से अच्छा 'हे' नहीं बनता, परन्तु इससे साइलेज अच्छा बन जाता है।
3. पशु पर इसका प्रभाव मृदुरेचक (Laxative) रहता है।
4. साइलेज बनाने की क्रिया में कुछ कार्बनिक अम्ल उत्पन्न होते हैं वह अम्ल लगभग वही होते हैं जो कि रूमेन में कार्बोहाइड्रेट के किण्वीकरण से उत्पन्न होते हैं। इस कारण साइलेज के कार्बनिक अम्लों का उपापचय भी रूमेन में उत्पन्न अम्लों के समान होता है।
5. 'हे' की अपेक्षा साइलेज में अधिक पोषक तत्व रहते हैं क्योंकि पत्तियाँ आदि भी साथ रहती है। यह तभी संभव है जबकि साइलेज को ठीक विधि से बनाया गया हो।
6. सस्ते तथा कम श्रम में फसलों को साइलेज के रूप में सुरक्षित रखा जा सकता है।
7. 'हे' की अपेक्षा अधिक कैरोटीन सुरक्षित रहता है।
8. साइलेज एक प्रकार के चारे वैक के रूप में कार्य करता हे।

साइलेज बनाने के लिए उचित फसल :

1. **घास वर्ग में (नेपियर, सूडान, पैराघास)** – संकर नेपियर जब 40–45 दिनों का हो जाये या 1.37 से 1.5 मीटर ऊँचा होने पर काट लेना चाहिए। इस प्रकार सूडान घास को उसके पूरे ऊँचाई तक पहुँचने के बाद काटना चाहिए। अन्य घास का फूल आने के पहले काट लेना चाहिए। अधिक ऊँचाई वाली घासों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लेना चाहिए ताकि इसको साइलो को कस कर भरने में आसानी होती है।

मक्का

2. **मक्का** – साइलेज बनाने में मक्का को सबसे अधिक उपयोग करते हैं। मक्का में शर्करा तथा स्टार्च अच्छी मात्रा में होती है, अतः साइलेज बनाते समय इसमें शीरा (Molasses) मिलाने की आवश्य कता नहीं होती है। मक्का में जब भुट्टा आ जाये तो इसकी कटाई करते है साथ ही साथ इसे छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं।

ज्वार

3. **ज्वार** – ज्वार में फूल आने के समय काट कर छोटे–छोटे टुकड़े कर साइलो में भरते हैं। अपक्व ज्वार में प्यूरिसिक अम्ल (PrussicAcid) पाया जाता है जो पशु के के लिए जहरीला होता है तथा मृत्यु भी हो सकती है परन्तु इसे साइलेज बनाने पर इस जहरीली अम्ल के बुरे प्रभाव से बचा जा सकता है।

जई

4. **जई** – जई से बहुत अच्छा साइलेज बनाया जा सकता है यदि फसलों में फूल लगने के बाद जब दाना में दूध की अवस्था में काटा जाये। साथ ही साथ फसल में 70 प्रतिशत नमी भी हो इसके लिए जई की साइलेज बनाने के पहले सुखा लेते हैं।

अन्य फसलों के अवशेष

1. **जलकुम्भी तथा धान के पुआल (Paddy straw) :** धान के पुआल एवं जलकुम्भी को कुट्टी (छोटे–छोटे टुकड़े) को 1:4 के अनुपात में मिलाकर साइलो में भरते हं तथा उसमें 70 किलो शीरा या गुड़ (Molasse) प्रति टन एक कुट्टी में समान रूप से मिला देते हैं ताकि अच्छी साइलेज मिल सके।

2. **आलू पौधे के ऊपरी भाग का अवशेष तथा धान का पुआल :** आलू पौधे के अवशेष तथा पुआल के कुट्टी को 5 :1 के अनुपात में मिलाकर साइलो पीट में भरते हैं तथा इस पर 3 प्रतिशत शीरा या गुड़ का घोल को मिला देते हैं ताकि इन दोनों से फसलों का अच्छा साइलेज प्राप्त हो सके।

1. **पोपुलर के पत्ते तथा गेहूँ के भूसा :** पोपुलर पेड़ के पत्ते तथा गेहूँ के भूसा को 7:1 के अनुपात में मिलाते हैं तथा इसमें 3 प्रतिशत शीरा या गुड़ का घोल को इस मिश्रीत फसल पर छिड़काव कर पूर्ण रूप से मिला कर साइलों पोट में भरते हैं। इन मिश्रीत फसलों से एक अच्छा साइलेज मिलता है।

साइलेज बनाने की विधि

1. **चारे को सुखाना और कुट्टी काटना :** चारे को अधिक गीला या शुष्क होने पर अच्छा साइलेज नहीं बन सकता है। इसके लिए पौधों को उचित अवस्था में काटना चाहिए। फसल की कटाई करने के बाद एक या दो दिन तक सुखाना चाहिए जिससे कि पौधे में विद्यमान अनावश्यक जल सूख जाय।

   सूखने के बाद चारे में उचित नमी की जाँच के लिए निम्न परीक्षण करना चाहिए।

   (क) चारे को 1. मुठ्ठी 2.5 से0मी0 2.50 से0मी0 के टुकड़ों में काटकर कुट्टी बना ले।

   (ख) इस प्रकार काटे गए चारे की कुट्टी को हाथ में लेकर कसकर मुठ्ठी बांधे।

   (ग) यदि मुठ्ठी खोलने पर चारा गोलाकार रह जाता है अथवा उसमें से पानी निकल आता है तो इसे अत्याधिक गीला माना जायेगा तथा इसे साइलेज के रूप में संरक्षित करने के लिए उपयुक्त नहीं है।

   (घ) यदि मुठ्ठी खेलने पर चारे का गोला धीरे–धीरे बिखरता हो तो साइलेज के रूप में संरक्षित करने के लिए उचित नमी की अवस्था माना जायेगा

   (ङ) यदि मुठ्ठी खेलने पर चारा विखर जाए तो इसका अर्थ है कि चारा अधिक शुष्क हो गया। चारे के उचित नमी के अवस्था में सम्पूर्ण चारे को 3–5 से0मी0 आकार के टुकड़ों में काट लेना चाहिए।

2. **साइलो की भराई :** सुखाने व चारे की कुट्टी बनाने के बाद साइलो में चारे को भरने की क्रिया एक महत्वपूर्ण कार्य है।

   (क) प्रत्येक 30 सें0 मी0 ऊँचाई तक चारों के साइलो में भरने के बाद इसे मजदूरों, ट्रैक्टर अथवा बैलों की सहायकता से भली–भाँति दबाना चाहिए।

   (ख) भराई का कार्य परतों में करना चाहिए तथा इस कार्य में अधिक देर नहीं करना चाहिए।

   (ग) यदि संरक्षित किया जा रहा चारा केवल दानेदार या घास वर्ग का है तो उसमें 4 किलो यूरिया प्रति टन चारे की कुट्टी में ठीक प्रकार से मिला देना चाहिए। यूरिया को चारे की भराई करते समय पतली परतों में चारे की कुट्टी को ऊपर से डालना चाहिए। ऐसा करने से चारे में प्रोटीन की कमी पूरी हो जाती हैं

   (घ) यदि संरक्षित किया जाने वाला चारा केवल फलीदार फसल का हो तो उसमें कार्बोहाइड्रेट व शर्करा तत्व की कमी को पूरा करने के लिए शीरा या गीला गुड़ 10 किलो ग्राम प्रति टन चारे की दर से समान रूप से मिला देना चाहिए। शीरा की उपस्थिति से चारे की पौष्टिकता के साथ पी0 एच0 मान भी बढ़ जाता है।

   (ङ) यदि चारे में फलीदार और दानेदार अथवा घासों का उचित अनुपात हो तो 2 किलोग्राम मोटा नमक प्रति टन चारे की दर से समान रूप से मिलाना चाहिए।

   (च) इस प्रकार साइलो को उस समय तक भरना चाहिए जब तक कि चारे की ऊँचाई साइलों की ऊपरी सतह से 1.5 से 2.0

मीटर ऊपर न हो जाए। चारे के इस प्रकार ऊपर निकले भाग में गुम्बज आकार (Dome Shaped) का ढालू बनाना चाहिए।

(छ) अन्त में चारे की उपरी सतह को किसी प्लास्टिक की मोटी चादर से ढककर मिट्टी के गाढ़े लेप की सहायता से सील कर देते हैं, जिससे हवा एवं नमी प्रवेश नहीं करे।

इस प्रकार सुरक्षित किया गया हरा चारा, लगभग 2.5 से 3.0 महीने में साइलेज के रूप में परिवर्तित हो जाता है। साइलेज उपयोग के लिए साइलो को सावधानीपूर्वक खोलना चाहिए ताकि उसमें से चारे की आवश्यक मात्रा आसानी से निकाली जा सके तथा साइलो को आसानी से ढका जा सके जिससे कि उसके अन्दर वायु रहित वातावरण बना रहे और साइलेज खराब न हो।

अच्छे साइलेज के पहचान

उच्च कोटी के साइलेज का रंग पीलापन लिए हरा होता है तथा इसमें से फलों की अल्कोहल मिश्रित गंध आती है, तथा जिसका pH मान 4.2 हो। लैक्टिक अम्ल की मात्रा 1.5 से 2.5 प्रतिशत तथा एसिटीक अम्ल की मात्रा 0.5 से 0.8 प्रतिशत हो साथ ही साथ वुटारिक अम्ल की मात्रा 0.1 प्रतिशत से कम होनी चाहिए। ऐसे साइलेज को अच्छे गुण वाला साइलेज कहते हैं जिसे जानवर चाव से खाते हैं।

साइलेज बनाने के लिए आवश्यक क्रियाएँ

साइलो में भंडारित हरे चारे में श्वास की क्रिया पूर्वतः कुछ समय तक चालू रहती हे। इन्जाईम तथा वायु पर निर्भर करने वाले जीवाणु (Microorganism) एवं फफूंद (Fungus) प्रारम्भिक अवस्था में सक्रिय हो जाते है। इसकी वृद्धि उस समय तक होती है जब तक कि साइलो के अन्दर शेष वायु खत्म न हो जाए। इस वायु के समाप्त होते ही चारे में उपस्थित फफूंद व जीवाणु मृत हो जाते हैं। इन जीवाणुओं द्वारा कार्बोहाइड्रेटतत्वों के उपयोग के फलस्वरूप भारी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड गैस उत्पन्न होती है तथा साइलो का वातावरण गर्म होकर $30^{\circ} - 38^{\circ}$ सेलसियस तापमान पहुँच जाता है। चारे में उचित जल व शर्करा की उपस्थिति में ऐसे जीवाणु पनप उठते हैं जो कि ऑक्सीजन के अनुपस्थिति में क्रियाशील हेते हैं। ये जीवाणु चारे के शर्करा तत्व को लैक्टिक अम्ल में परिवर्तित कर देते हैं जो चारे के पोषक तत्वों को सुरक्षित रखने में सहायक होते हैं। इस प्रकार ऑक्सीजन के अनुपस्थिति में लैक्टिक अम्ल, एसिटिक अम्ल हरे चारे में उपलब्ध कार्बोहाइड्रेट के रसायनिक परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं, सड़न की क्रिया सम्पादित करने वाले जीवाणुओं तथा फफूंद की वृद्धि को नियमित कर उच्च कोटि के साइलेज बनाने में सहायक होते हैं। लगभग 2.5 से 3.0 महीने तक इस प्रकार रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप हरा चारा साइलेज में परिवर्तित हो जाता है।

साइलो के प्रकार

साइलेज बनाने के लिए विभिन्न आकार एवं प्रकार के साइलो का प्रयोग किया जाता है। जिनमें (1) वंकर साइलो (फर्श पक्का तथा दीवारे ईंटो की बनी होती है) (2) पिट साइलो – यह वर्गाकार गढ़े के आकार का निर्मित साइलो है। 3–5 मीटर लम्बा x 5 मीटर चौड़ा x 2 मीटर गढ़ा पिट में 50 टन हरा चारा से साइलेज बनाने के लिए उपयुक्त हे। (3) ट्रेच साइलो (4) टावर साइलो :– यह भारत में प्रचलित नहीं है। (5) ड्रम साइलो (6) पी0 भी0 सी0 (PVC) साइलो।

सुखा घास

गाठें बना तथा घनीकरण करना (Bailing and Densification)

सूखा घास के अधिक घनत्व के कारण रख–रखाव में काफी जगह की आवश्यकता होती है तथा इसको एक जगह से दूसरे जगह ले जाने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। सूखे घास की गाँठे बनाकर घनीकरण (Densification) कर इसकी परिवहन एक स्थन से दूसरे स्थान पर कम समय, कम खर्चा और अधिक दक्षता (efficiently) कर सकते हैं। इस तकनीकी द्वारा सूखे चारे को अधिक उत्पादन वाले क्षेत्र से इसकी कमी वाले क्षेत्र में परिवहन कर सकते है।

है का घनीकरण

गेहूँ के भूसा का घनीकरण

गेहूँ के भूसा को घनीकरण करने के लिए 20 प्रतिशत शीरा मिलाकर गाँठे बना सकते हैं जिससे की चारे की पाचनशीलता (Digestibility) बढ़ाई जा सके। गेहूँ का भूंसा, शीरा (Molasses) तथा यूरिया को क्रमशः 78:20:2 के अधिकतम अनुपात में मिलाकर घनीकरण ईंट (Densifying block) एक विशेष प्रकार के हाई डेनसिटी वेलीग मशीन (High density

bailing machine) द्वारा की जाती है। गेहूँ के भूसा द्वारा बनाई गई ब्लॉक (Block) का औसतन घनत्व 398 किलो/मी0^2 होता है घनीकरण के समय एडमिक्चर (admixture) का नमी 20 प्रतिशत बनाकर रखा जाता है।

सम्पूर्ण चारा ब्लॉक

सम्पूर्ण चारा ब्लॉक (Complete feed block) :

सम्पूर्ण चारा ब्लॉक, गेहूँ का भूसा 20 प्रतिशत, सूखा बरसीम की पत्ती 20 प्रतिशत, दाना (Concentrate) मिश्रण 19 प्रतिशत तथा खनिज (mineral) मिश्रण और विटामिन 1 प्रतिशत के अनुपात में मिलाकर सम्पूर्ण चारा ब्लॉक तैयार करते हैं जिससे चारे का पौष्टिक मूल्य (Nutritive value) बढाया जा सके। विषम परिस्थितियों में यानी सूखा, अकाल एवं बाढ़ की स्थिति में चारा के कमी वाले स्थान पर इसे परिवहन (transport) किया जा सके ताकि पशुधन को भुखमरी से बचाया जा सके जिससे दुग्ध उत्पादन में होने वाली कमी को कम किया जा सके।

हमने सीखा

- दुधारू पशुओं को सालों भर अच्छा तथा पौष्टिक चारा मिलना चाहिए।
- चारे की कमी वाले समय में चारा संरक्षण द्वारा (हे एवं साइलेज का उपयोग कर) दुग्ध में उत्पादन की वृद्धि कर सकते हैं।
- हरे चारे को उपयुक्त पौष्टिक अवस्था में काटकर 13–15 प्रतिशत नमी पर सुखाकर इस प्रकार संरक्षित करते हैं कि इनमें विद्यमान पत्तियाँ एवं पोषक तत्व, हरा रंग (कैरोटीन) एवं प्रोटीन का नुकसान न हो उन्हें 'हे' कहते हैं।
- लूसर्न; बरसीम एवं लोबिया 'हे' बनाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती हैं।
- 'हे' से अपक्षालन या विरंजन क्रिया द्वारा पोषक तत्व नष्ट होते है।
- वायु रहित वातावरण में हरे चारे का भंडारण, चारे को सड़ने व फफूंद लगने से बचाता है तथा शर्करा व अन्य पोषक तत्व सुरक्षित रहते हैं, जिससे उच्च किस्म का बढ़िया साइलेज प्राप्त होता है।
- ज्वार, बाजरा, मक्का आदि साइलेज बनाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है।
- उच्च कोटि के साइलेज का रंग पीलापन लिए हरा होता है तथा इसमें से फलों की अल्कोहल मिश्रित गंध आती है तथा जिसका pH मान 4.2 है।
- सूखे घास की गाँठें बनाकर घनीकरण कर, इन्हें आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान ले जा सकते हैं।
- सम्पूर्ण चारा बलॉक का उपयोग सूखे, बाढ़ आदि की स्थिति में किया जा सकता है।

अभ्यास

1. **खाली स्थानों को भरिए :**
   (क) 'हे' में नमी की मात्रा .....प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।
   (ख) 'हे' में ..... एवं ..... क्रिया द्वारा पौष्टिक तत्व नष्ट हो सकते हैं।
   (ग) हरे चारे को साइलेज के रूप में परिवर्तित होने में लगभग ..... माह का समय लग जाता है।
   (घ) उच्च कोटि के साइलेज में pH का मान..... रहता है।
   (ङ) भारतवर्ष में ..... मौसम में चारे की उपलब्धता अधिक रहती है।
2. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।**
   (क) 'हे' एवं 'साइलेज' के लिए उपयुक्त फसल का नाम लिखें।
   (ख) अच्छे 'हे' एवं 'साइलेज' के गुणों का वर्णन करें।
   (ग) सुखे चारे के घनीकरण से क्या समझते हैं ?
   (घ) सम्पूर्ण चारा ब्लॉक क्या है एवं इसका उपयोग कब किया जाता है ?
   (ङ) हरे चारे की साइलेज में परिवर्तित होने की प्रक्रिया का वर्णन करें।

*****

6.9 पशुओं एवं कुक्कुटों की प्रमुख बीमारियां एवं उनसे बचाव

भारत एक कृषि–प्रधान देश है, यहाँ की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। वर्तमान में आर्थिक दृष्टि से पशुपालन किसानों के लिए रोजगार एवं आय का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। अतः पशुओं के महत्वपूर्ण संक्रामक रोग और उनकी रोकथाम के उचित तरीकों की जानकारी आवश्यक है। पशुओं के संक्रामक रोगों से प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक नुकसान होने की संभावना है। इसलिए संक्रामक रोगों की रोकथाम और नियंत्रण पशुपालन में कई गुना उत्पादकता–वृद्धि का अवसर प्रदान करता है।

हमारे देश में पायी जानेवाली पशुओं की विभिन्न नस्लें यहाँ अलग–अलग जलवायु क्षेत्रों के अनुकूल हैं। इन सबकी विशेषता यह है कि इनमें रोग–प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है। परंतु जैसे–जैसे पशुओं के नस्ल सुधार के लिए विदेशी नस्लें अथवा अन्य प्रदेश की पशुओं का प्रयोग करते हैं, इनमें रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। अतः, पशुपालकों को पशुओं के विभिन्न रोग और उनके बचाने के उपाय का ज्ञान होना आवश्यक है ताकि रोग होने पर पशुओं की मृत्यु से होनेवाले आर्थिक नुकसान से बचा जा सके।

अच्छा स्वास्थ्य पशु के लिए आवश्यक है। किसी भी पशु की शारीरिक संरचना या शरीरिक प्रक्रिया में परिवर्तन की स्थिति को बीमारी कहते हैं। बीमार पशुओं की पहचान उनके सामान्य दिनचर्या में परिवर्तन होने पर कर सकते हैं। इसके लिए सभी पशुओं की सामान्य दिनचर्या का ज्ञान तथा उनमें परिवर्तन जैसे भूख में कमी, पानी पीने में कमी, दुग्ध उत्पादन में कमी, शारीरिक वृद्धि में कमी, साँस लेने में कठिनाई, गोबर व मूत्र में परिवर्तन, पशु के बुखार में उत्तार–चढ़ाव, पशु की चाल, स्वभाव या आवाज में परिवर्तन आदि लक्षण के आधार पर हम कह सकते हैं कि पशु स्वस्थ्य नहीं है। अतः, हरेक पशुपालकों को उन सारे तथ्यों और नियमों या उपायों की जानकारी आवश्यक है, जिसके सहारे वे स्वस्थ व बीमार पशुओं को पहचान कर सकें तथा समय रहते उचित इलाज के लिए पशु चिकित्सक को रेफर कर सकें।

पशु स्वास्थ्य के लिए सामान्य ज्ञान

पशु रोगों की पहचान तथा चिकित्सा आरंभ करने के पहले चिकित्सा के प्रारंभिक ज्ञान को जानना बहुत आवश्यक है। इससे बीमार पशुओं की पहचान तथा चिकित्सा में मदद मिलती है।

पशु बोल नहीं सकते और न अपने रोगों के बारे में बतला सकते हैं। मूक पशुओं के पालक अथवा पशुसेवक रोगी पशुओं के लक्षणों को बतलाने, पशुपालकों अथवा पशुसेवकों द्वारा बतलाये गए सभी लक्षणों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। अतः, पशुओं को रोग से बचाने के लिए यह जान लेना जरूरी है कि स्वस्थ और अस्वस्थय पशुओं का चिह्न क्या है।

स्वस्थ पशुओं के चिह्न

1. **बाहरी चिह्न :** स्वस्थ पशुओं में शारीरिक स्फूर्ति और चैतन्य के लिए चिह्न प्राप्त होते हैं। जुगाली (पागुर) करना, अच्छी तरह से खाना–पीना, थुथने पर नमी होना, रोयें मुलायम होना, त्वचा चमकीले होना, आँखें चमकीली तथा चौकन्ने, पेशाब का रंग साफ तथा गोबर साधारण आदि चिह्न स्वस्थ पशुओं में पाये जाते हैं।

थूथने पर नमी जाँचने की विधि (चित्र संख्या 1)

2. **मीतरी चिह्न :** शारीरिक तापमान, हृदय (नाड़ी) एवं फेंफड़े की गति (साँस) सभी पशुओं में सामान्य होनी चाहिए। इनकी अधिकता या कमी से पशु अस्वस्थ हो जाते हैं।

2.1 **शारीरिक तापमान :** शारीरिक तापमान प्रत्येक पशुओं में अलग–अलग होते हैं, इनकी जानकारी के आभाव में हम कह सकते हैं कि किसी पशु में फिवर (बुखार) है या नहीं। पशुओं के शारीरिक तापमान कई कारणों से प्रभावित होते हैं। जैसे– दिन

का समय, श्रम, उत्तेजना, भय, दर्द–पीड़ा, रोग, पशुओं के नस्ल, लिंग इत्यादि कारणों से प्रभावित होते हैं। गर्मी के दिनों में सुबह की अपेक्षा शाम को अधिक तापमान पाया जाता है। पशुओं का शारीरिक तापमान का सही अभिलेखन थर्मामीटर के प्रयोग से किया जाता है। थर्मामीटर को पैखानें के रास्ते (गुदामार्ग) के अन्दर घुसाकर एक किनारे की तरफ झुकाकर, 1–2 मिनट तक रखने पर पारे की चढ़ाव को पढ़कर तापमान जाना जाता है।

पशुओं के बुखार जाँचने की विधि (चित्र संख्या 2)

भिन्न–भिन्न पशुओं का शारीरिक तापमान, नाड़ी गति व फेफड़े की गति निम्नलिखित है–

पशु	शारीरिक तापमान (^{0}F)	नाड़ी गति (प्रति मिनट)	फेफड़े की गति (प्रति मिनट)
गाय	101.5	60 – 90	25 – 30
बछड़ा	102.0	80 – 100	25 – 30
भैंस	101.0	50 – 70	30 – 40
भेड़–बकरी	103.0	70 – 90	10 – 20
कुत्ता–बिल्ली	101.0	60 – 120	15 – 30
सुअर	102.0	60 – 90	10 – 20
घोड़ा	100.0	28 – 40	8 – 15
हाथी	97.6	25 – 35	8 – 10
मुर्गा–मुर्गी	107	120 – 160	15 – 30

2.2 नाड़ी (हृदय) गति :

नाड़ी या हृदय गति की गिनती धमनी के वेग तथा स्टेथॉस्कोप यन्त्र से की जाती है। जुगाली करने वाले पशुओं के पूँछ की जड़ तले या बाहरी जबड़े की धमनी और कुत्तों में जाँघ के भीतरी भाग में फिमोरल धमनी के वेग को गिनती करने से नाड़ी की गति जानी जाती है। स्टेथॉस्कोप यन्त्र को कान में लगाकर और बाईं छाती (वक्ष) पर रखकर हृदय की धड़कन को सुना एवं समझा जा सकता है। बुखार (ज्वर), घबराहट, चौंकने व हृदय की कुछ बीमारियों में तेज हो जाती है।

पशुओं के नाड़ी गति जानने की विधि (चित्र संख्या 3)

स्टेथॉस्कोप के द्वारा हृदय गति जानने की विधि (चित्र संख्या 4)

2.3 श्वास–फेफड़े की गति

साँस की गति से फेफड़े की गति पहचानी जाती है, इसके अलावा छाती और पेट के फैलने और दबने की गिनती, स्टेथॉस्कोप के द्वारा भी किया जा सकता है। बीमारी की हालत तथा परिश्रम करते समय साँस की गति तेज हो जाती है। फेफड़े की विभिन्न बीमारियों में साँस की गति तेज व धीमी भी हो सकती है।

स्टेथॉस्कोप के द्वारा फेंफड़े की गति जानने की विधि (चित्र संख्या 5)

2.4 श्लेष्म झिल्ली :

श्लेष्म झिल्ली या 'म्युकस मेम्ब्रेन' की जाँच पशु स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य माना जाता है। इसकी जाँच आँख के निचले पलक को देखकर या पेशाब (मादा) के रास्ते को देखकर किया जाता है। एक स्वस्थ पशु के श्लेष्म झिल्ली का रंग हल्का लाल एवं गीला होता है। किसी प्रकार के रंग परिवर्तन जैसे आँख पीला पड़ना, अधिक लाल होना या सफेद होना बीमारी का निशानी है। आँख का धँसना व सूखा होना भी अस्वस्थ पशु की निशानी है।

श्लेश्म झिल्ली जाँचने की विधि (चित्र संख्या 6)

बीमार पशुओं के कुछ विशेष लक्षण निम्नलिखित हैं–

1. बीमार पशु प्रायः सुस्त रहता है तथा अपने समूह से अलग रहना पसंद करता है।
2. पशु कोने में बैठना या सिर झुकाकर अलग खड़ा रहना पसंद करता है, उसके चलने का तरीका भी बदल जाता है।
3. पशु जुगाली (पागुर) करना कम कर देता है या बन्द कर देता है। वह अक्सर आहार कम कर देता है या बिल्कुल बन्द कर देता है।
4. बीमार पशु के शरीर की चमक कम पड़ जाती है। रोएँ खड़े हो जाते हैं, त्वचा खुरदरी और शुष्क हो जाती है।
5. आँखें अंदर धँसी हुई स्थिर या सूखी हुई, नाक सूखा या गर्म तथा कुछ बीमारियों में नाक से पानी जैसा स्राव निकलते रहते हैं।
6. पशु का मुँह से साँस लेना, खाँसना, लँगड़ाना, गर्भधारण न करना रोग के मुख्य लक्षण हैं।
7. पशु की उत्पादन–क्षमता का बेहद घटना बीमारी का संदेह पैदा करता है।
8. मुँह से लार गिरना, कब्जियत या अधिक दस्त होना, गोबर पतला या दुर्गन्ध भरा होना, पेशाब का रंग पीला या लाल होना, साँस लेने में कठिनाई होना अथवा तेज चलना इत्यादि लक्षण बीमार पशुओं में मिलते हैं।

पशुओं एवं मुर्गियों में पाये जाने वाले साधारण रोग

रिन्डर पेस्ट या माता : यह एक जानलेवा छूत वाली बीमारी है। इस बीमारी को कैट्ल प्लेग, पोकनी या आर0 पी0 नाम से भी जाना जाता है। यह बीमारी अतिशीघ्र एक जानवर से दूसरे जानवर को लग जाती है। यह बीमारी गाय और भैंसों को अधिक प्रभावित करती है। अन्तरराष्ट्रीय एपिजोओटिक कार्यालय ने भारतवर्ष को 2006 ई0 से रिण्डर पेस्ट संक्रमण से मुक्त होने की मान्यता प्रदान कर दी है तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पूरे विश्व से इस रोग का उन्मूलन होने की सूचना दी है।

कारण : यह रोग एक प्रकार से मोरबिल्ली, वाइरस (विषाणु) से होता है। पशुओं में बीमारी लगने के बाद 1 से 2 सप्ताह में बीमारी का लक्षण प्रकट होता है। रिण्डर पेस्ट वाइरस मनुष्यों के खसरा तथा कुत्तों के सी.डी. नामक वाइरस से बहुत नजदीक है। यह बीमारी छूत (सीधा–सम्पर्क) तथा संक्रमित पानी पीने से फैलता है।

लक्षण : इस बीमारी में प्रारंभिक लक्षण हैं तेज ज्वर, भूख की कमी, नाक और आँख से स्राव। इसके साथ ही मुख, नाक तथा पेशाव और पैखाना की झिल्ली लाल हो जाती है और जीभ छिल जाते हैं। नाक एवं मुख से खूनयुक्त लार चलता है। ऐसी दशा में दस्त होना शुरू हो जाता है और पशु कमजोर होते चले जाते हैं। ज्यादातर प्रभावित पशु 6 से 12 दिन के अन्दर मर जाते हैं।

उपचार : रिण्डर पेस्ट बीमारी का उपचार संभव नहीं है, परंतु सहायक देखभाल से मूल्यवान जानवरों को बचाया जा सकता है।

दस्तरोधक, द्रव और इलेक्ट्रोलाइट चिकित्सा और ज्वर–नाशक दवा प्रभावित पशुओं को दिया जा सकता है।

बचाव : इस बीमारी का इलाज करना संभव नहीं था, इसलिए इसके उन्मूलन के लिए टीकाकरण पर भरोसा किया गया। कड़े रूप से विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा अन्तरराष्ट्रीय एपिजोओटिक कार्यालय के नियमों का पालन करके तथा टीकाकरण के द्वारा पशुओं को रिण्डर पेस्ट बीमारी से बचाया जा सका है। भारतवर्ष में इस बीमारी से बचाव के लिए रिण्डपेस्ट बचाव कार्यक्रम वर्ष 1952 में शुरू किया गया तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा अन्तरराष्ट्रीय एपिजोओटिक कार्यालय ने 2006 ई0 में हमारे देश को इस बीमारी से मुक्त घोषित किया। पूरे विश्व में टीकाकरण और सख्त संगरोध को अपनाकर के इस महामारी को 2011 ई0 से मुक्त किया गया है।

बचाव और रोकथाम के उपाय

(i) रोगी पशु को अलग रखना चाहिए।

(ii) पशुओं के स्थान को साफ सुथरा रखना चाहिए।

(iii) मृत पशुओं को अच्छी तरह गाड़ देना चाहिए।

(iv) स्वस्थ पशुओं को टीका लगवा देना चाहिए।

फुट एण्ड माउथ डीजीज (खुरपका–मुँहपका रोग)

यह एक तेजी से फैलने वाला विषाणुजनित अतिसंक्रामक रोग है, जो प्रायः पागुर (जुगाली) करने वाले एवं विभाजित खुर वाले पशुओं में पाया जाता है। रिण्डर पेस्ट की तुलना में इस बीमारी में मृत्यु–दर बहुत कम होती है। परंतु अधिक रूग्णता होने के कारण प्रभावित पशुओं की कार्यक्षमता और दूध–उत्पादन की क्षमता काफी गिर जाती है।

कारण : खुरपका–मुँहपका रोग पिकोर्ना नामक विषाणु से फैलता है। पिकोर्ना विषाणु एक आर0एन0ए0 वाइरस है जो रोगी पशु को मात्र छूने से और हवा के माध्यम से फैलते हैं। ठण्डा मौसम और नमीयुक्त वातावरण खुरपका मुँहपका रोग को तेजी से फैलने में मदद करते हैं। अतः, इस रोग का प्रकोप प्रायः ठण्ड के मौसम में पाया जाता है। पशु के सम्पर्क में आये सभी चीज तथा उनके स्राव संक्रमण के स्रोत हैं। खुरपका मुँहपका रोग के पिकोर्ना वाइरस की सात प्रजातियाँ हैं। इनके नाम हैं– ओ, ए, सी, सैट–1, सैट–2, सैट–3 और एशिया–1। वर्तमान में भारत में केवल ओ., ए. और सी. का प्रकोप है। यह रोग प्रायः गोवंश को प्रभावित करता है परंतु यह भैंस, बकरी–भेंड़, मृग, शूअर तथा ऊंट भी इस बीमारी से संवेदनशील हैं।

लक्षण : यह जानलेवा बीमारी नहीं है। इस रोग के प्रारंभ में पशु खाना–पीना छोड़ देता तथा उसके शरीर का तापमान 104–106 डिग्री फॉरेनहाइट तक बढ़ जाता है। इस रोग का ऊष्मायन अवधि 2–8 दिन है। कभी–कभी यह 2–3 सप्ताह तक बढ़ जाता है। मुँह से रस्सी जैसा लार गिरने लगता है तथा मुँह से चबाने में चप–चप की आवाज सुनाई पड़ती है। मुँह में फफोले बन जाते हैं, जो अंततः फूट जाते हैं। फफोले के फूटने से जानवर को अत्यन्त पीड़ा और जलन होती है। इसी के साथ पशु के चारों पैरों के खुरों के बीच फफोले पड़ जाते हैं, जो अंत में घाव बन जाते हैं। इस कारण से पशु लँगड़ाकर चलने लगता है। इसी दो स्थिति के कारण इस बीमारी का नाम खुरपका मुँहपका रोग (फुट एण्ड माउथ डीजीज) पड़ा है। गाय की तुलना में बछड़ों में यह रोग घातक होता है और उनमें हृदय की बीमारी 'टाइगर हर्ट' के कारण लगभग 20 प्रतिशत तक मृत्यु–दर पाया गया है।

बचाव : इस रोग से बचाव के लिए अलग–अलग देशों में अलग नियम हैं। हमारे देश में इस बिमारी से बचाव के लिए टीकाकरण तथा संगरोध विधि अपनाकर किया जाता है। रोगी पशु को अन्य पशुओं से बिल्कुल अलग रखना चाहिए। रोगग्रस्त पशु का आवागमन बन्द कर देना चाहिए। दुधिया को साफ कपड़ा तथा उसके हाथ को पोटैशियम परमैंगनेट के घोल में गाय दूहने के पहले धूलवा लेना चाहिए। नियमित रूप से प्रत्येक छः माह पर 'खुरहा टीका' लगाना इस बीमारी का सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय है। सभी बछड़ों को जो चार माह से ऊपर उम्र का हो जाता है, उसमें खुरहा का टीका लगना अनिवार्य होता है। आजकल पशुपालन विभाग, बिहार सरकार पशु स्वास्थ्य रक्ष पखवारा के तहत सभी दुधारू पशुओं को खुरपका के छमाही टीके लगवा रही है।

उपचार : इस बीमारी का कोई विशेष उपचार नहीं है। अतः, केवल लक्षणों के आधार पर ही उपचार संभव है। रोगी पशु के मुँह और जीभ को एन्टीसेप्टिक माउथ वाश, जैसे फिटकिरी के पानी, पोटैशियम परमैगनेट, सोडियम कार्बोनेट के पानी से दिन में तीन–चार बार धोना चाहिए। छालों को मुलायम रखने के लिए बोरिक ऐसिड और ग्लिसिरिन का लेप लगाना चाहिए। इसी प्रकार खुर और थन के घाव को एन्टीसेप्टिक घोल से धोकर ड्रेसिंग करना जरूरी है। इस बीमारी के दौरान पशु को मुलायम आहार– जैसे हरा चारा को सुखा करके तथा पालक साग खिलाना चाहिए।

रैबीज

यह एक विषाणु जनित रोग है जो मनुष्य तथा गर्म खून वाले पशुओं को प्रभावित करता है। इस बीमारी के कई नाम हैं जैसे– हाइड्रोफोबिया, लाइसा, पागल कुत्ता रोग, जलटंगा इत्यादि। भारत एक रैबीज स्थानिक क्षेत्र है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस बीमारी को भारत देश का सबसे खतरनाक, जुनोटिक बीमारी की समस्या में इसका स्थान रखा है। जुनोटिक बीमारी का अर्थ होता है कि जो बीमारी पशुओं से मनुष्यों में फैलता हो।

कारण : रैबीज बीमारी का कारण एक आर0एन0ए0 वाइरस (विषाणु) है जो 'बुलेट' के आकार का 'लिस्सा' वाइरस है जो 'रैब्डोविरिडी' परिवार का सदस्य है। यह बीमारी प्रमुख रूप से कुत्ते और बिल्ली की प्रजाति के पशुओं में पाया जाता है। यह एक न्यूरोट्रॉपिक वायरस है और यह पशुओं के केंद्रीय तंत्रिका–तंत्र में शुद्ध रूप में पाया जाता है। यह बीमारी कुत्ते में लक्षण प्रकट होने से पाँच दिन पहले ही लार में विषाणु मौजूद रहते हैं। कुत्ता रैबीज बीमारी का एक प्रमुख वाहक है हालांकि सभी गर्म खून वाले जानवरों के लिए यह एक अतिसंवेदनशील रोग है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार पशुओं में रैबीज बीमारी दो प्रकार के पाये जाते हैं। एक शहरी प्रकार जहाँ यह बीमारी संरचन कुत्ते के द्वारा फैलता है तथा दूसरे सिलवेटिक प्रकार जहाँ यह बीमारी जंगली जीवन के माध्यम से फैलता है। भारत में रैबीज बीमारी मुख्यतः रैबीज कुत्तों (पागल कुत्तो) को काटने से फैलता है। हालाँकि यह बीमारी सियार, लोमड़ी, जंगली बिल्ली, नेवला तथा चूहों के काटने से भी फैल सकता है।

लक्षण : रैबीज बीमारी में कुत्ते के व्यवहार में बदलाव आ जाता है। बुखार आना, लार गिरना, खाना–पीना बंद कर देना, बार–बार पेशाब करना आदि इसके प्रारंभिक लक्षण हैं। इसके बाद शांत अवस्था आती है। इसमें निचले जबड़ों की मांसपेशियों में लकवा मार देता है और जबड़ा नीचे लटक जाता है। जब लार गिरना कम हो जाता है, तब मुँह से झाग दिखाई देने लगता है और स्वरग्रंथियों में लकवा मार देने के कारण कुत्तों की आवाज में बदलाव नजर आता है। अंत में अधिक लकवाग्रस्त होने के कारण कुत्ता 10 दिनों के अन्दर मर जाता है।

कुत्ता, भेंड़, सुअर, गाय एवं घोड़ों में इस बीमारी का उष्मायन अवधि 15–60 दिन पाया गया है, परंतु मनुष्यों में इस बीमारी का उष्मायन अवधि बहुत परिवर्तनशील है (चर में) जो एक समस्याग्रस्त रेंज हैं, पागल कुत्ते के काटने और लक्षण प्रकट होने के बीच की अवधि को उष्मायन अवधि या इन्क्युवेशन पीरियड कहते हैं। जो सामान्य तौर पर मनुष्यों 20–60 दिन होता है और यह काटने के स्थान और मस्तिष्क के बीच की दूरी पर लक्षण प्रकट होने का समय निर्भर करता है। पशु में पूँछ की बजाय सिर पर काटने से लक्षण जल्दी प्रकट होते हैं।

बचाव : रैबीज एक असाध्य, खतरनाक और जानलेवा रोग है। इसकी रोकथाम के लिए कड़े कदम उठाने की जरूरत है। अपने सख्त नियमों तथा रोकथाम के प्रभावशाली उपायों से बहुत सारे देश इस रोग से मुक्ति पा चुके हैं। हम जान चुके हैं कि हमारे देश में रैबीज मुख्यतः पागल कुत्तों के काटने से फैलता है और भारतीय समाज में लावारिस कुत्ते की संख्या अंधाधुंध बढ़ रही है। अतः, इस बीमारी से बचाव के लिए हमें लोगों को इस बीमारी के बारे में प्रचार–प्रसार के माध्यम से जानकारी देना आवश्यक है। हम एनिमल वर्थ कंट्रोल (ए.बी.सी.) प्रोग्राम अपनाकर, सभी आवारा व पालतू कुत्तों का टीकाकरण लगाकर तथा सभी पालतू कुत्तों का रजिस्ट्रेशन करा कर इस बीमारी से हम बचाव कर सकते हैं।

उपचार : रैबीज एक लाइलाज रोग है और लक्षण प्रकट होने पर रोगी पशु या मनुष्य की मृत्यु निश्चित है। इसलिए रैबीज कुत्ते या अन्य संदेह पशुओं के काटने के बाद घाव को अच्छी तरह से पानी की धार तथा साबुन से धोना चाहिए। सोडियम बाइकार्बोनेट रैबीज विषाणु को बढ़ने से रोकता है। अतः, सोडियम बाइकार्बोनेट या सोडा से घाव को अच्छी तरह से धोना चाहिए। एण्टी रेबीज सीरम घाव के चारों तरफ डालना चाहिए तथा ऐसे घाव को 24 घंटे के अन्दर सीलना नहीं चाहिए। सभी जानवरों को काटने के तुरंत बाद रैबीज टीका 0, 3, 7, 14, 28 तथा 90 दिन पर देना अनिवार्य है।

हिमोरेजिक सेप्टीसिमिया या अषढ़िया

यह एक संक्रामक और छूतवाली जीवाणु जनितरोग है जो अचानक होती है। अषाढ़ माह में वर्षा के साथ कृषि–कार्य प्रारंभ होते हैं, उसी समय गाय, भैंस व बछड़ों में अचानक गला–घुटन जैसी समस्या पैदा होती है और पशु मर जाते हैं। अषाढ़ माह अथवा मानसून में गर्मी और आर्द्रता के कारण, कृषि–कार्य में व्यस्त, भूखे और कमजोर पशु या लम्बी दूरी की यात्रा से आए पशुओं में यह जीवाणु जनित रोग पैदा होता है। गला घुटन से अचानक मौत व अषाढ़ माह में रोग के फैलने के कारण इस बीमारी को गलाघोंटू व अषाढ़िया कहा जाता है। इसके अलावा भी इसके अनेक नाम हैं जैसे– डकहा, जहाजी बुखार, गरगटिया इत्यादि।

कारण : पाश्चुरेला मल्टोसिडा नामक जीवाणु के कारण यह रोग होता है जो मुँह और गले के भीतर चारा–दाना के साथ जाता

है। पाश्चुरेला एक ग्राम नकारात्मक बैक्टीरिया (जीवाणु) है। गाय व भैंस इस बीमारी के लिए अतिसंवेदनशील प्राणी हैं। इस बीमारी से युवा बढ़ते पशु जो 6 माह से 2 वर्ष की आयु समूह के भीतर होते हैं, वह सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं। इसके अलावा यह कभी–कभी भेंड़, बकरियाँ और ऊँट में भी पाया जाता है। घोड़ों में यह रोग बहुत कम तथा कुत्तों में नहीं के बराबर पाया जाता है।

लक्षण : गायों में यह बीमारी एपिजोओटिक अनुपात में पाया जाता है। इस बीमारी का प्रकोप वर्षा ऋतु में अधिक होता है और प्रभावित पशुओं के समवर्ती कंपन के साथ शारीरिक तापमान (104–107°F) की उच्च वृद्धि पाई जाती है। इसके बाद विपुल लार, आँसू तथा नाक से स्राव निकलना इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। निमोनिया, सांस में तकलीफ और गले के नीचे सूजन आदि इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। प्रभावित मामलों में पेटदर्द तथा गंभीर दस्त के भी संकेत इस बीमारी में प्राप्त होते हैं।

उपचार : हिमोरेजिक सेप्टीसिमिया या गलाघोंटू बीमारी का उष्मायण अवधि केवल 2–5 दिन है। अतः एक बार लक्षण प्रकट होने पर अधिकतर पशु मर जाते हैं, लेकिन रोग की शुरुआती अवस्था में सल्फर ग्रुप की दवा नस में दिये जाएँ, तो परिणाम ठीक निकलते हैं। सल्फोनामाइड और टाईमैथोप्रिम का कॉम्बिनेशन भी लाभदायक होता है। इसके अतिरिक्त रोगसूचक उपचार जैसे एण्टीइन्फलामेट्री, एनालजेसिक, कौर्टीजोन दवा देने से लाभ होता है।

बचाव : इस रोग से बचाव के लिए पशु स्थानिक क्षेत्रों के सभी अतिसंवेदनशील जानवरों में (एच. एस.) का रोग–निरोधी टीकाकरण किया जाना अनिवार्य है। हर साल वारिश शुरू होने से पहले मई, जून (अषाढ़ से पहले) में ही गलाघोंटू (एच.एस.) का अनिवार्य वार्षिक टीकाकरण करवाएँ। गलाघोंटू रोग से मरने वाले पशुओं के शरीर को जमीन में गाड़ दें या जला दें। बिहार सरकार अब प्रतिवर्ष पशु स्वास्थ्य रक्षा पखवारा के रूप में सरकारी स्तर पर अभियान चलाकर इस रोग का प्रतिरक्षण टीकाकरण करवा रही है।

ब्लैक क्वाटर या लँगड़ी

ब्लैक क्वाटर या लँगड़ी अर्थात् जहरवाद मुख्यतः गाय, भैंस, भेंड़ और बकरी में पाया जाने वाला एक जीवाणु जनित रोग है। यह एक तीव्र संक्रामक, परंतु छूत वाली बीमारी नहीं है। इसमें पशु को ज्वर के साथ पिछले अंग में सूजन हो जाता है जिससे पशु लँगड़ाने लगते हैं। यह अधिकतर जवान (4–24 माह), अच्छे तन्दरूस्त पशुओं में बरसात के दिनों में होता है। यह बीमारी गंभीर जीवविषरक्ता (टौक्सिमीया) पैदा करता है तथा इसमें मृत्यु दर बहुत अधिक होती है।

कारण : लंगड़ी बीमारी, 'क्लोस्ट्रिडियम शोवियाई' नामक जीवाणु के कारण होता है जो एक ग्राम पॉजिटिव स्पोर गठन तथा विष पैदा करने वाला जीवाणु (वैक्टीरिया) है। इस जीवाणु के स्पोर वर्षों तक मिट्टी में जीवित रहते हैं तथा संक्रमण के स्रोत बने रहते हैं।

लक्षण : इस रोग से प्रभावित पशु में तेज ज्वर, जुगाली बन्द, पिछले पैरों के ऊपर या जाँघों में दर्द–भरा सूजन जिससे पशु को लंगड़ाना इत्यादि लक्षण दिखाई पड़ते हैं। सूजन दबाने पर गड्ढा होना, अतिशीघ्र बढ़ना और गैस से भरा होना तथा हाथ से छूने और दबाने पर कड़–कड़ या चर–चर की आवाज होना भी इस रोग के विशेष लक्षण हैं। इसके बाद त्वचा और मांस सड़ने लगते हैं। रोग के स्पोर और बैक्टीरिया बाद में शरीर के अन्य भागों में भी फैल जाते हैं जिससे जीभ, जबड़े, हृदय व अन्य अंगों की मांसपेशियों में भी ऐसी ही स्थिति पैदा हो जाती है। इस अवस्था में शरीर में सेप्टिसीमिया बुखार हो जाता है, और पशु की मौत हो जाती है।

उपचार : इस रोग की शुरुआत में इलाज का संतोषजनक प्रतिक्रिया सूचित किया गया है। परंतु, बीमारी गंभीर होने पर यह लाइलाज हो जाता है। पशुचिकित्सक के सलाह पर पेनसिलीन ग्रुप की दवा मांस के अंतर (अंतः मांस) तथा अंतः सिरा विधि से लगाना चाहिए। इसके साथ एन्टी ब्लैक क्वाटर सीरम त्वचा में लगाने से लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ त्वचा को पोटाश परमैंगनेट के घोल से धोना चाहिए तथा इसके अतिरिक्त रोगसूचक उपचार, जैसे एन्टीइन्फ्रलामेट्री और एनालजेसिक दवायें भी मांस में लगवा देना चाहिए।

बचाव : अषढ़िया या हिमोरेजित सेप्टीसिमिया के तरह बी. क्यू. (लँगड़ी) एक खतरनाक और जानलेवा रोग है, इसलिए इलाज के बजाय बचाव जरूरी है। इसलिए रोगी पशु को शीघ्र ही अन्य स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए। मृत पशुओं को अच्छी तरह से गड़वा देना चाहिए तथा प्रत्येक पशु को तीन माह की उम्र के बाद हर साल मई, जून में नियमित टीकाकरण करवाना चाहिए।

मेसटाइटीस व थनैला रोग

दुधारू पशुओं के थनों या स्तन ग्रंथियों में किसी प्रकार के सूजन को मेसटाइटीस व थनैला रोग कहते हैं। इस रोग में दुग्ध–निर्माण करनेवाले उत्तक नष्ट हो जाते हैं और दूध का उत्पादन कम या बंद हो जाता है। स्तन की सूजन किसानों के लिए भारी आर्थिक नुकसान के लिए जिम्मेदार है।

कारण : मेसटाइटीस एक बहू माइक्रोबियल रोग है। बहुत प्रकार के सूक्ष्म जीवाणुओं जैसे बैक्टीरिया, कवक और वायरस की प्रजातियाँ स्तन की सूजन के कारण के रूप में शामिल किया गया है। यह बीमारी भैंसों की तुलना में गायों में अधिक होती है, तथा अधिक दुग्ध–उत्पादक विदेशी नस्लों और अधिक वियान वाली गायें इस बीमारी से ज्यादा संवेदनशील होते हैं।

लक्षण : थनैला के लक्षण तीन से चार प्रकार के होते हैं–अति तीव्र थनैला में थन में सूजन तथा दर्द के साथ तापमान की उच्च वृद्धि पाई जाती है। थन से दूध का निकलना बंद हो जाता है तथा स्राव अक्सर रक्त दाग के साथ आते हैं। तीव्र थनैला में प्रणालीगत प्रतिक्रिया नहीं पाया जाता है तथा स्तन सूजन के साथ दूध के रंग और रूप में बदलाव नजर आते हैं। उप तीव्र थनैला में स्तन की सूजन नहीं पाई जाती है, तथा दूध में परिवर्तनशील बदलाव पाया जाता है। पुरानी थनैला रोग में थन कड़ा हो जाता है।

उपचार : इस रोग का उपचार करने के पहले दूध की जाँच आवश्यक है। दवा लगाने के पहले एन्टीबायोटिक सेंसीटिभिटी जाँच अवश्य करा लेना चाहिए। थन के खराब दूध को बाहर निकाल देना चाहिए। साथ में पूरक या सहायक दवाएँ– जैसे सूजन कम करने की दवा, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने की दवा तथा जिंक, सेलेनियम, विटामिन 'ए' और विटामिन 'ई' इत्यादि पशु के रोग–निरोधी क्षमता को बढ़ाते हैं।

बचाव : थनैला थन की गंदगी तथा रख–रखाव में कमी से फैलनेवाली रोग है। इसके बचाव के लिए समय–समय पर दूध की जाँच उप–नैदानिक (सबक्लिनिकल) थनैला के लिए किया जाना चाहिए। इसके साथ बाड़े की व स्तन की सफाई गाभिण होने पर दूध सूखने के तरीकों को अपनाकर किया जाता है। थनैला एक बहुकारकी रोग है। इसलिए अभी भी इसका एक सम्पूर्ण टीका बाजार में उपलब्ध नहीं है। हालाँकि शोध के द्वारा कुछ टीकों का निर्माण हुआ है जिसे भविष्य में बाजार में आने की संभावना है। अतः, समुचित टीका के अभाव में हमलोग टीट डुबकी, टीट सील, दूध निकालने के क्रम को अपनाकर थनैला बीमारी की व्यापकता को कम कर सकते हैं।

ट्रिपैनोसोमियेसिस या सर्रा रोग

सर्रा रोग एक संक्रामक बीमारी है, जो लगभग प्रत्येक पशु में अलग–अलग कारकों के द्वारा फैलता है और इसके नाम भी अलग–अलग हैं। गाय एवं भैंसों में इसे सर्रा, ऊँट में तिबरसा, घोड़े में डूरीन, मनुष्यों में नींद की कमजोरी इत्यादि नाम प्रमुख हैं। इस रोग का प्रकोप प्रायः वर्षा के बाद देखा जाता है, क्योंकि यह रोग मक्खियों के द्वारा फैलता है, जिसकी जनसंख्या वर्षाऋतु और उसके बाद बढ़ जाता है।

कारण : यह बीमारी गोवंश प्रजातियों में एक प्रोटोजोआ 'ट्रिपेनोजोमा इवेन्साई' नामक रक्त परजीवी के कारण फैलता है। यह रक्तपरजीवी खून चूसने वाली मक्खियों के काटने से फैलता है। यह बीमारी व्यापक रूप से उष्णकटिबंधीय और उप–उष्णकटिबंधीय देशों में पाया जाता है। इस बीमारी को भारत वर्ष में खासकर बिहार राज्य में बड़ी मात्रा में दुधारू पशुओं का एक प्रमुख रोग के रूप में देखा जाता है।

लक्षण : सर्रा का अर्थ है सड़ा हुआ। यानी इस रोग में पशु दुर्बल और जर्जर हो जाते हैं। इसमें रोगी पशु को खून की कमी, तेज बुखार और शारीरिक कमजोरी हो जाती है। अतिपाति (परएक्यूट) होने पर तेज बुखार के साथ प्रचूर उत्तेजना, इधर–उधर भागना या वृत में घूमना, सिर को दिवाल में ढकेलना, मूर्छित सा होना, ज्वर गिर जाना, पेशाव थोड़ा–थोड़ा होना, मुँह से लार गिरना इत्यादि प्रमुख लक्षण हैं। अतिपाति (एक्यूट) होने पर सर्रा बीमारी में ज्वर का नहीं होना जाँघों में कंपन होना या पसीना से भीगना तथा पैरों में सूजन और थुथना जमीन पर रखना आदि इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। दीर्घस्थायी या क्रोनिक सर्रा होने पर पशु दुर्बल, रक्तहीन होते चले जाते हैं और पीछे से उठने में असमर्थ हो जाते हैं और अंत में मृत्यु के शिकार हो जाते हैं।

उपचार : इस बीमारी का उचित इलाज पशुचिकित्सक की सलाह पर करना चाहिए। इसके लिए प्रभावित पशु के खून की जाँच करना अनिवार्य है, क्योंकि इस बीमारी के लक्षण बहुत अस्थिर और परिवर्तनशील हैं। इसका इलाज 'एण्टी प्रोटोजोअल' नामक दवाओं के प्रयोग से किया जा सकता है। साथ में पूरक या सहायक दवा जैसे नस में डेक्सट्रोज की सूई तथा विटामिन बी–कॉम्लेक्स दवाएँ भी दी जा सकती हैं।

बचाव : इस रोग से बचाव खूनचूसने वाली मक्खियों वेक्टर को नियंत्रित करके किया जा सकता है। इसके लिए खटालों और बथानों में पशुचिकित्सक की सलाह पर दवा की उचित मात्रा का छिड़काव करना चाहिए। बरसात के मौसम में पशुओं का रक्त जाँच करवा लेना चाहिए और 'एण्टी प्रोटोजोअल' नामक दवा स्थानिक क्षेत्र में बचाव के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए।

बेबेसियोसिस या लाल पेशाब रोग

पशुओं में यह टिक अढैल के द्वारा फैलने वालारक्त परजीवी बीमारी है जिसमें पेशाब लाल हो जाता है। सर्रा बीमारी की तरह ही लाल पेशाब रोग विशेषकर गर्मी और बरसात के मौसम में अधिक देखा जाता है। वैसे कभी–कभी किसी भी मौसम में पशु इस रोग से ग्रसित हो सकते हैं। इस रोग को टीकफिवर, रेड वाटर या पाइरोप्लाजमोसिस भी कहा जाता है।

कारण : इस रोग का कारण एक प्रोटोजोआ जीनस–बाबेसिया है, जो विभिन्न पशुओं में अलग–अलग प्रजातियों के होते हैं। गाय एवं भैंसों में यह रोग, बाबेसिया बाईजेमिना तथा बाबेसिया वोभिस के कारण होता है, जो पशु के लाल रक्त कोष (आर.बी. सी.) को प्रभावित करता है। यह लक्षण संकर व विदेशी नस्लों के गायों में अधिकतर पाया जाता है।

लक्षण : लाल रंग का पेशाब, बुखार (ज्वर) के साथ आना इस रोग का प्रमुख लक्षण है। परंतु अन्य सारे बीमारियों में भी पेशाब लाल रंग के होते हैं, जिसकी जाँच जरूरी है। इस बीमारी में पेशाब, लाल रक्त कोष के टूटने के कारण लाल हो जाती है जिसे हीमोग्लोबिनुरिया कहते हैं। रक्त की कमी के कारण रक्त पतला हो जाता है और सांस तेज चलने लगती है। पशुओं में तेज बुखार, झिल्ली रक्तहीन और पीला पड़ जाना भी इस बीमारी के प्रमुख लक्षण हैं।

उपचार : रेड वाटर अथवा लाल पेशाब लक्षण देखने पर पशुचिकित्सक से प्रभावित पशुओं की जाँच आवश्यक है और निदान कराने पर ही चिकित्सा करना उचित होता है। चिकित्सा के लिए बेबेसियोसियस बीमारी की पसंद की दवा उचित मात्रा में देना चाहिए। साथ–साथ बुखार कम करने की दवा भी देना चाहिए। गंभीर अवस्था अथवा अधिक रक्त अल्पता की स्थिति में प्रभावित पशुओं को खून चढ़ाने से लाभ होता है।

बचाव : लाल पेशाब रोग अठैल के काटने से फैलता है। अतः, हमें अपने पशुओं को अठैल के प्रकोप से बचाना चाहिए जिससे कि हम लाल पेशाब रक्तपरजीवी को एक जानवर से दूसरे जानवरों में फैलने से रोक सकते हैं। हम पशुओं को जहर स्नान, मालाथियोन 0.1 से 0.5 प्रतिशत या डेल्टामेथ्रिन 2–4 मिली लीटर प्रतिलीटर के घोल से करवा कर अठैल रोग से बचाव कर सकते हैं।

कॉक्सीडियोसिस व खूनी–दस्त रोग

कॉक्सीडियोसिस मुर्गियों व चूजों का एक खूनी–दस्त रोग है। यह पौल्ट्री उद्योग में एक घातक समस्या है और चूजों में उच्च मृत्यु–दर के लिए जिम्मेदार है।

कारण : खूनी–दस्त रोग कॉक्सिडिया नामक प्रोटोजोआ के कारण होता है। इस प्रोटोजोआ की कुल आठ प्रजातियाँ हैं जिससे मुर्गियों में रोग फैलते हैं। इनमें इमेरिया टेनेल्ला और इमेरिया नेकेट्रिक्स प्रमुख हैं। मुर्गियों में इसके कारण मृत्यु–दर 90–100 प्रतिशत तक पाया जाता है। कॉक्सिडिओसिस तथा इमरेयिनेकेट्रिक्स आंतरिक कॉक्सिडिओसिस का कारण बनते हैं।

लक्षण : इस बीमारी की पहचान लक्षण के आधार तथा मुर्गियों का विष्ठा और उसकी आँत से कुछ खुरचन लेकर यथाशीघ्र किया जा सकता है। खूनी दस्त होना, अवसाद, शिथिल पंख, कम अण्डा–उत्पादन, शरीर के वजन में कम वृद्धि आदि इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। खूनी–दस्त रोग ज्यादातर 3–12 सप्ताह की आयु में चूजों को प्रभावित करती है।

उपचार : उपचार निदान होने पर प्रारंभ करना चाहिए। लक्षण और मुर्गियों का शव परीक्षण निदान के लिए आवश्यक है। इसके उपरान्त तुरंग सामूहिक एवं समुचित चिकित्सा सल्फा या फ्रयूराजोलिडोन दवाओं की उचित मात्रा पानी में मिलाकर एक सप्ताह तक पिला कर किया जा सकता है।

बचाव : इस बीमारी से बचाव शटल और रोटेशन कार्यक्रम अपनाकर किया जा सकता है। मुर्गीशाला का समय–समय पर सफाई, नमी वाले दड़वे का बदलाव तथा $(100')^2$ क्षेत्र पर 5 से 7 किलोग्राम चूना पाउडर का छिड़काव करना आवश्यक है। चूजों का दाना पानी के प्रभावित विष्ठा से दूर रखना चाहिए तथा पानी के बर्तनों को तार की बनी ऊँची जगह पर रखना चाहिए। नवीनतम एंटीकॉक्सिडियल दवा जैसे– 'इओनोफोरेस' 75–125 पी.पी.एम. पौल्ट्री फीड में मिलाकर खिलाने से इस रोग के प्रकोप से बचा जा सकता है।

रानीखेत या न्यू कैसल रोग

बचाव : इस रोग से बचाव के लिए चूजों में टीका लगवा देना चाहिए तथा बड़े मुर्गियों में भी मृत टीकों को इन्जेक्शन लगवाना चाहिए।

हमने सीखा

- जुगाली करना तथा थुथने पर नमी होना स्वस्थ पशु का चिह्न है।
- प्रत्येक पशु के शारीरिक तापमान अलग–अलग होते हैं।
- पशुओं का शारीरिक तापमान का सही अभिलेखन थर्मामीटर के प्रयोग से किया जाता है।
- पशुओं में नाड़ी या हृदय गति धमनी के वेग तथा स्टेथॉस्कोप यन्त्र से की जाती है।
- एक स्वस्थ पशु के श्लेष्म झिल्ली का रंग हल्का लाल एवं गीला होता है।
- रिन्डर पेस्ट, फुट एवं माउथ डीजीज, रैबीज पशुओं के विषाणु जनित रोग हैं।
- हिमोरोजेक सेप्टीसिमिया, ब्लैक क्वाटर, मेसटाइटीस पशुओं के जीवाणु जनित रोग हैं।
- बेबेसियोसिस, कॉक्सीडियोसिस, पशुओं और कुक्कुटों के प्रोटोजोअल बीमारी हैं।
- रानीखेत, चेचक रोग (मुर्गी), आई.बी.डी. मुर्गियों के विषाणु जनित रोग हैं।
- रैबीज बीमारी एक जानलेवा जुनेटिक बीमारी है, जिससे बचाव ए.बी.सी. प्रोग्राम अपनाकर व टीकाकरण अपनाकर किया जा सकता है।

अभ्यास

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

(क) जुगाली करने वाले पशुओं में नाड़ी गति ..... वेग को गिनती करके किया जाता है।

(ख) अन्तरराष्ट्रीय एपिजोओटिक कार्यालय ने भारत वर्ष को 2006 ई0 से ..... संक्रमण से मुक्त होने की मान्यता प्रदान की है।

(ग) नाक एवं मुख से खून युक्त लार गिरना गाय एवं भैंसों में ..... बीमारी का प्रमुख लक्षण है।

(घ) भारतवर्ष में खुरपका–मुँहपका बीमारी ....., ..., ... पिकोर्ना वाइरस के कारण होते हैं।

(ङ) बछड़ों में टाईगर हर्ट बीमारी ..... के कारण होता है।

(च) पागल कुत्ते के काटने के बाद 0, 3, 7, 14, 28 तथा 90 दिनों पर टीकाकरण करना ..... बीमारी का बचाव है।

(छ) ..... और ..... बीमारी गाय एवं भैंसों में वर्षा ऋतु में अधिक होता है।

1. थनैला रोग से बचाव कैसे किया जाता है?
2. गायों में मक्खियों व अठैल से फैलने वाले प्रमुख रोग कौन–कौन से हैं?
3. ट्रिपैनो सोमियेसिस बीमारी को सर्रा रोग भी कहते हैं। कैसे?
4. मुर्गियों के खूनी–दस्त रोग कौन हैं?
5. मुर्गियों में टीकाकरण के द्वारा किन–किन रोगों से बचा जा सकता है?

यह एक बहुत ही तेज गति से बहुत भारी मृत्यु–दर करनेवाला वीषाणुजनित, मुर्गियों की सबसे खतरनाक बीमारी है। यह बीमारी प्रथम बार न्यूजीलैंड देश के न्यू कैसल नामक जगह पर सन् 1926 तथा भारत के उत्तराखण्ड राज्य के रानीखेत स्थान पर सन् 1928 में दर्ज किया गया। इसलिए इस बीमारी का नाम न्यू कैसल रोग और रानीखेत बीमारी से जाना जाता है।

कारण : रानीखेत बीमारी मुर्गियों के एवियन पारामिग्सो वायसर के कारण होता है, जिससे उनके डाह के आधार पर तीन प्रकार हैं– लेण्टोजेनिक, मीशोजेनिक और भेलोजेनिक। यह रोग टर्की और बत्तख में मुर्गियों की तुलना में कम तीव्र रूप से पाया जाता है। हालांकि यह कबूतर, तोता, कौवा इत्यादि पक्षियों को भी प्रभावित करता है।

लक्षण : इस रोग में तीव्र ज्वर होता है। आधा चोंच खोलकर तथा गर्दन उठाकर जल्दी–जल्दी मुर्गियाँ साँस लेती हैं तथा सीटी जैसा आवाज निकालती हैं। मुँह से लार आता है, मुर्गियाँ सर्दी का शिकार हो जाती हैं तथा कलंगी का रंग गाढ़ा या हल्का पीला पड़ जाता है। दस्त पानी जैसा हरा या पीला या चूना के समान बदबूदार होता है। अन्त में गर्दन मुड़ जाती है तथा मुर्गी अपना सर घुमाने लगती है। डैनों में लकवा मार देता है।

उपचार : इस रोग की कोई प्रभावी दवा नहीं है, इसलिए इसका निदान शव परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। रोग फैलने की तीव्र गति, अधिक मृत्यु–दर तथा मरी हुई मुर्गियों के आँत पर लाल धब्बे तथा आँत के ऊपर वाले भाग में लाल फुन्सी जैसा दिखाई देना इस रोग का सूचक है। इस बीमारी में कमजोरी से बचाव–प्रतिरोधक क्षमता की ह्रास से बचाव तथा माध्यमिक जीवाणु संक्रमण को रोकने के लिए जीवाणुरोधी दवा, विटामिन व खनिज तथा इम्युनोमोडुलेटर दवा पिलाया जा सकता है। ऐसा करने से मृत्यु–दर को कुछ कम कर सकते हैं।

बचाव : इस रोग से बचाव के लिए टीका बाजार में उपलब्ध है। परंतु कमजोर, बीमार व उष्मायन अवधि में टीकाकरण करने से रोग और तेजी से फैलता है। इस रोग से मरे मुर्गियों को ऊपर से चूना या ब्लीचिंग पाउडर डालकर जमीन में गाड़ देना चाहिए अथवा जला देना चाहिए।

मुर्गियों में चेचक रोग (फाउल पॉक्स)

फाउल पॉक्स शरीर को बेपर भागों (पंखहीन) ज्यादातर चेहरे की त्वचा को प्रभावित करता है जो एक वायरस (विषाणु) जनित रोग है।

कारण : मुर्गियों में चेचक रोग, मुर्गी चेचक विषाणु जो कि एक डी. एन. ए. वायरस है के कारण होता है। यह बीमारी गर्मी के मौसम में अधिक पाया जाता है।

लक्षण : मुर्गी चेचक के नैदानिक लक्षण तीन रूपों में पाया जाता है– पहला त्वचा संबंधी रूप जिसमें शरीर के पंखहीन भागों पर छोटे–छोटे पिंड (फुन्सियाँ) निकलकर सूख जाती हैं। दूसरा रूप डिप्थेरिक रूप है, जिसमें पीले पनीर जैसा सामग्री मुर्गियों के जीभ, तालु और स्वरयंत्र छिद्र पर पाया जाता है, तीसरा आँख का रूप है, जिससे नेत्राश्लेष्मलाशोथ तथा आँख बन्द तथा कभी–कभी अंधापन पाया जाता है।

उपचार : इस बीमारी का रानीखेत की तरह कोई प्रभावी इलाज नहीं है, परंतु अन्य जटिलता और माध्यमिक बैक्टीरियल संक्रमण को रोकने के लिए ब्रांड स्पेक्ट्रम एंटीबायोटिक का प्रयोग किया जाता है।

बचाव : इस बीमारी से बचाव मुर्गी चेचक टीका लगवा कर किया जा सकता है। मुर्गी चेचक टीका को 6 से 8 सप्ताह की मुर्गियों में लगवाना चाहिए।

आई. बी. डी. या गमबोरो रोग

यह पक्षियों और मुर्गियों में सफेद दस्त, अधिक कष्ट एवं कंपन पैदा करने वाली अति संक्रामक एवं घातक विषाणु–जनित बीमारी है। यह रोग 2 से 9 सप्ताह के उम्र वालों को होता है। बड़ी मुर्गियाँ इस रोग से कम प्रभावित होती हैं।

कारण : इस रोग का कारण एक आर. एन. ए. विषाणु है, जो रियो वायरस परिवार के ओरवी वायरस के समान होता है। यह प्रायः सभी सघन मुर्गीपालन वाले स्थानों पर पाया जाता है।

लक्षण : इस बीमारी में रोग–प्रतिरोधक क्षमता घट जाती है। इसका लक्षण ठीक–ठीक पहचान में नहीं आता है। मुर्गियों का कांपना, सफ़ेद दस्त होना तथा बर्सा कोशिकाओं का नष्ट होना भी इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं।

उपचार : अन्य विषाणु जनित मुर्गी रोगों की तरह इसका भी इलाज लक्षणात्मक ही किया जाता है ताकि अन्य जटिलता उत्पन्न न हो।

6.10 पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान

कृत्रिम गर्भाधान एक ऐसी विधि है जिसमें कृत्रिम रीति से नर का वीर्य ऋतुमयी मादा में मादा जनन अंग के रास्ते किसी उपकरण (ए.आई.गन.) की सहायता से गर्भाशय में डाला जाता है ताकि मादा गर्भधारण कर सके।

कृत्रिम गर्भाधान का आरम्भ सन् 1332 मे अरब देश में हुआ था। वैज्ञानिक रूप से इस विधि का प्रयोग इटली के लैजरो स्पलेन्जिनी नामक वैज्ञानिक ने सन् 1730 में कुत्ते पर किया।

भारत में सबसे पहले अगस्त 1939 में कृत्रिम गर्भाधान की शुरुआत डॉ. सम्पत कुमारन के द्वारा किया गया।

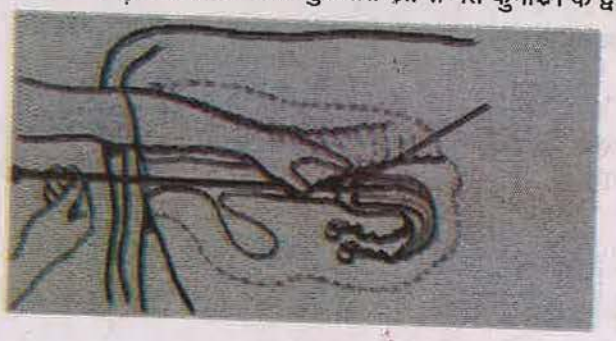

कृत्रिम गर्भाधान का महत्व :

पशुधन में तेजी से नस्ल सुधार के लिये कृत्रिम गर्भाधान ही एक उत्तम तथा सरल उपाय है। प्राकृतिक विधि से एक नर पशु द्वारा एक वर्ष में 30 से 100 मादा पशुओं को गर्भधारण कराया जा सकता है। परन्तु कृत्रिम गर्भाधान से प्राकृतिक विधि की अपेक्षा कई गुना अधिक पशु गर्भित किये जा सकते हैं। उन्नत नस्ल के पशुओं की संख्या में वृद्धि के साथ–साथ दूध उत्पादन भी कम समय में काफी मात्रा में बढ़ाया जा सकता है।

कृत्रिम गर्भाधान के लिये उपयोगी उपकरण :

- कृत्रिम गर्भाधान गन
- स्ट्रा
- सीथ
- स्ट्रा थाइंग पात्र
- थर्मामीटर
- कैंची
- सोखा
- तरल नत्रजन पात्र

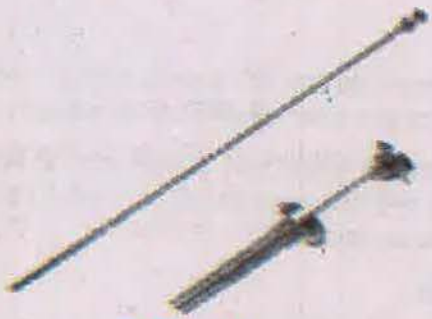

कृत्रिम गर्भाधान गन

तरल नत्रजान पात्र

र्भाधान का उचित समय :

गायों में अण्डाणु एवं शुक्राणु की आयु लगभग एक दिन की होती है। अर्थात् गर्मी के प्रारंभ में कराया गया गर्भाधान शुक्राणु के मृत होने से विफल हो सकता है क्योंकि अण्डाणु गर्मी प्रारंभ होने के लगभग 30 घंटे पश्चात् ही उपलब्ध हो पाता है। बेहतर गर्भाधान दर प्राप्त करने हेतु कृत्रिम गर्भाधान गर्मी के मध्य से अन्त की ओर कराया जाना चाहिए। यद्यपि गर्भाधान गर्मी के प्रारंभ तथा 36 घंटे बीतने के पश्चात् भी हो सकता है। किन्तु गर्भाधान दर में कमी आ जाती है।

आज भी हमारे देश में कृत्रिम गर्भाधान के अंतर्गत आने वाले पशुओं की संख्या 20 प्रतिशत ही है जबकि तीव्र नस्ल सुधार हेतु

अधिकतम पशु आबादी को इस कार्यक्रम के अंतर्गत लाना होगा। नैसर्गिक प्रजनन द्वारा नस्ल सुधार का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकेगा। अतः कृत्रिम गर्भाधान को अधिक से अधिक पशुओं हेतु अपनाया जाना समय की आवश्यकता है।

कृत्रिम गर्भाधान के लाभ :

प्राकृतिक ढंग से मादा को गर्भित करने की तुलना में कृत्रिम गर्भाधान के अनेक लाभ है:–

1. **सांडों का उचित उपयोग :**

कृत्रिम गर्भाधान से सांड के एक बार के वीर्य से 100–150 गाय–भैंस गर्भित किये जा सकते है। इस विधि को अपनाकर अच्छे गुण वाले कुछ ही सांडों से अधिकाधिक संख्या में गाय–भैंस गर्भित किये जा सकते हैं।

2. **नस्ल सुधार :**

कृत्रिम गर्भाधान से हम अपनी कम दूध देनेवाली देशी नस्ल में सुधार कर सकते हैं। इसके लिये हम किसी भी उन्नत नस्ल के सांड के वीर्य से अपनी देशी गाय को यदि गर्भित करायें तो उससे पैदा होनेवाली बाछियाँ निःसंदेह ही अपनी मां से ज्यादा दूध देगी।

3. **जनन अंगों के रोगों की रोकथाम :**

इस विधि से जनन अंगों के छूतदार रोग जैसे गर्भपात, योनि की सूजन आदि रोगों को फैलने से रोकने में भी अत्यधिक सहायता मिलती है।

4. **नये सांड का मूल्यांकण :**

किसी नये सांड में अपना गुण, अपनी संतान में देने की क्षमता का पता इस विधि द्वारा शीघ्र ही चल जाता है। इस प्रकार घटिया सांडों के वीर्य की जाँच करने के बाद उन्हें प्रजनन कार्य से निकाला जा सकता है। अतः किसी सांड की संतान पैदा करने की क्षमता की परख कम आयु में ही हो जाती हैं।

5. **उत्तम प्रजनन :**

सांड से प्रत्येक बार लिये गये वीर्य की पूरी जाँच करने पर घटिया तथा अच्छे सांडों की पहचान हो जाती है। इस प्रकार प्रजनन कार्य अधिक उत्तम और कुशलता पूर्ण ढंग से किया जा सकता है।

6. **अच्छे सांड के उत्पादन काल में वृद्धि :**

उपयोगी सांड चोट लगने या वृद्ध होने के कारण प्राकृतिक रीति से संभोग करने योग्य नहीं रहते। इस प्रकार के उपयोगी सांडों का वीर्य कृत्रिम तरीके से प्राप्त करके वीर्यदान द्वारा उनका उपयोग किया जा सकता है।

सांडों के वीर्य को वर्फ के रूप में जमाकर वर्षों तक सुरक्षित रखने के नवीन तरीके भी निकाले गये हैं। इस प्रकार सांड की मृत्यु के बाद भी सुरक्षित वीर्य से अच्छे नस्ल और गुणों वाली संतान पैदा की जा सकती है। इसके अतिरिक्त विदेश के सांडों का वीर्य मँगाकर अपने देश की गायों को गर्भित किया जा सकता है।

7. **संकरण की अधिक संभावना एवं सुविधा :**

जिन पशुओं में शारीरिक असमानताओं के कारण प्राकृतिक संभोग कठिन होता है वहाँ कृत्रिम गर्भाधारण विशेष लाभकारी सिद्ध होता है।

8. **छोटे पशुपालकों के लिये लाभप्रद :**

जिन पशुपालकों के पास कम संख्या में पशु है वे अधिक खर्च करके अच्छे सांड नहीं रख सकते। वे प्रायः घटिया सांडों से ही अपनी गायों, भैंसों को गर्भित करा लेते हैं। कृत्रिम गर्भाधान विधि द्वारा छोटे पशुपालक बढ़िया सांडों का पूर्ण लाभ उठा सकते हैं।

(घ) यदि सांड संक्रामक बीमारी से ग्रसित हो तो उससे प्राप्त वीर्य अधिक संख्या में पशु को रोग ग्रसित नहीं कर सकता है। (.....)

(ङ) कृत्रिम गर्भाधान विधि में वीर्यदान कर्त्ता को इस विधि का ज्ञान होना आवश्यक नहीं है। (.....)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कृत्रिम गर्भाधान से आप क्या समझते हैं ?
2. कृत्रिम गर्भाधान का उचित समय क्या है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कृत्रिम गर्भाधान से होने वाले लाभ को स्पष्ट करें ?
2. पशु के नस्ल सुधार कार्यक्रम में कृत्रिम गर्भाधान के महत्व पर प्रकाश डालें ?

*****

9. कृत्रिम गर्भाधान से गर्भधारण में प्राकृतिक विधि की अपेक्षा ज्यादा सफलता मिलती है।
10. प्राकृतिक विधि की अपेक्षा इस विधि द्वारा वीर्य दान में कम समय लगता है तथा पशु पालक को सांड की तलाश में इधर–उधर भागना नहीं पड़ता है।
11. चूँकि कृत्रिम गर्भाधान के लिये थोड़े नर पशुओं की आवश्यकता है इसलिए यह विधि अपेक्षाकृत कम खर्चीला है।
12. इस विधि से स्वच्छ वीर्य इकठ्ठा किया जा सकता है।

कृत्रिम गर्भाधान विधि की सीमाएँ :

1. कृत्रिम गर्भाधान विधि को उपयुक्त ढंग से काम में लाने के लिये वीर्यदान कर्त्ता को इस विधि का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।
2. वीर्यदान कर्त्ता को प्रशिक्षित होना और पशु के जनन अंगों की बनावट तथा कार्यों का भी पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है।
3. इस विधि के ठीक उपयोग से जहाँ यह पशुधन को जल्दी सुधार सकती है वही गलत उपयोग से पशुधन को नुकसान भी पहुँचा सकती है।
4. वीर्य एकत्रित करते समय यदि लापरवाही वरती गयी तो सांड कृत्रिम मैथुन के लिये तैयार नहीं होता है।
5. यदि सांड संक्रामक बीमारी से ग्रसित हो तो उससे प्राप्त वीर्य अधिक संख्या में पशु को रोग ग्रसित कर सकता है।
6. इस कार्य के लिये आधारभूत संरचना की आवश्यकता होती है जैसे–फ्रोजेन सीमेन बैंक प्रयोगशाला तथा इसके उपकरण इत्यादि।

अभ्यास

हमने सीखा

कृत्रिम गर्भाधान

कृत्रिम गर्भाधान विधि के अंतर्गत मादा के गर्भाशय में नर का वीर्य डाला जाता है जिससे मादा गर्भ धारण करती है। विशेष उपकरण कृत्रिम योनि के द्वारा सांड का वीर्य प्राप्त कर उसे कम तापक्रम (–196°C) पर स्ट्रा के अंदर संग्रहित किया जाता है। गाय के गर्म होने पर गर्मी के मध्य से अंतिम समय तक स्ट्रा को थाइंग के पश्चात् इससे प्राप्त वीर्य को ए.आई.गन. के सहारे गर्भाशय में डाला जाता है। पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान के द्वारा नस्ल सुधार कार्यक्रम के साथ–साथ दुग्ध उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि होती है।

वस्तुनिश्ठ प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

(क) भारत में सबसे पहले अगस्त 1939 में कृत्रिम गर्भाधान की शुरुआत ..... के द्वारा किया गया।

(ख) पशु में तेजी से नस्ल सुधार के लिए ..... एक उत्तम एवं सरल उपाय है।

(ग) गायों में अण्डाणु एवं शुक्राणु की आयु लगभग ..... दिन की होती है।

(घ) कृत्रिम गर्भाधान में सांड के एक बार के प्राप्त वीर्य से ..... गाय–भैंस गर्भित किये जा सकते हैं।

(ङ) सांड से प्राप्त वीर्य को ..... तापक्रम पर स्ट्रा के अंदर संग्रहित किया जाता है।

2. सही एवं गलत चिह्न लगायें

(क) मादा पशु के जनन अंग में नर का वीर्य ए.आई.गन. की सहायता से डाला जाता है। (.....)

(ख) मादा पशु में कृत्रिम गर्भाधान गर्मी प्रारंभ होने से पहले करना चाहिए। (.....)

(ग) कृत्रिम गर्भाधान के द्वारा देशी नस्ल की गायों में नस्ल सुधार किया जा सकता है। (.....)

6.11 दूध दूहने के सिद्धांत एवं स्वच्छ दुग्ध उत्पादन

दुधारू पशु से दूध प्राप्त करने की प्रक्रिया को दूध दोहन कहते हैं जिसके अंतर्गत पहले गाय के थन को उत्तेजित (स्टीमुलेट) किया जाता है और तेजी के साथ बारी–बारी से सभी छिमियों (टीट) से पूर्ण दूध निकाला जाता है।

दूध दोहन की प्रक्रिया हाथ के द्वारा या मिल्किंग मशीन के सहारे पूरी की जाती है।

दूध दोहन से पहले गाय के थन को उत्तेजित (स्टीमुलेट) किया जाता है ताकि मिल्क इजेक्शन रिफलेक्स/लेट डाउन की प्रक्रिया शुरू हो सके और ऑक्सीटोसीन हारमोन मायोइपिथिलियल कोशिका पर संकुचन कर दूध को निकालने में मदद कर सके।

दूध दोहन से स्वच्छ दुग्ध की प्राप्ति निम्नलिखित अवयवों पर निर्भर करती है:–

(क) आन्तरिक कारक

1. थनैला रोग
2. फोर मिल्क

(ख) वाह्य कारक

1. गायः– थन, शरीर
2. मिल्क मैन
3. बर्त्तन/पेन
4. गौशाला
5. दुग्ध दोहन की विधियाँ
6. पशु आहार और जल
7. दुग्ध का संग्रहण एवं वितरण

आन्तरिक अवयव जो दूध की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है उसमें प्रमुख है – थनैला रोग एवं फोर (प्रथम) मिल्क। इसलिए थनैला की जाँच नियमित अन्तराल पर करते रहना चाहिए और दूध दुहने से पहले प्रथम 2–3 स्ट्रीम (धार) को छोड़ देना चाहिए।

वाह्य कारक में गाय का शरीर, थन, मिल्कर, बर्त्तन, बार्न और आहार एवं पानी दूध को दूषित करने का स्त्रोत बन सकता है। इसलिए इन सबकी साफ सफाई अत्यंत आवश्यक है।

दूध दोहन की प्रक्रिया के बाद दूध को मसलिन क्लाथ से छाँनकर जितनी जल्दी हो सके इसका तापक्रम 4°C तक करना चाहिए और इसी तापक्रम पर संग्रहित करना चाहिए ताकि दूध में सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या को सीमित रखा जा सके।

दूध दोहन की विधियाँ :

दूध दोहन की प्रमुख निम्नलिखित दो विधियाँ हैं:–

(क) हाथ के द्वारा दूध दोहन – हैंड मिल्किंग।

(ख) मशीन के द्वारा दूध दोहन – मशीन मिल्किंग।

(क) हैंड मिल्किंग विधि के अंतर्गत तीन तरीके से दूध दोहन की जाती है :

1. फुल हैंड मिल्किंग
2. स्ट्रीपिंग
3. नकलिंग

फुल हैंड मिल्किंग

ऊपर वर्णित तीनों विधियों में फुल हैंड मिल्किंग को सर्वोत्तम विधि मानी जाती है क्योंकि इस विधि के द्वारा दूध दोहन से पूर्ण और सुरक्षित दूध की प्राप्ति होती हैं। स्ट्रीपिंग और नकलिंग विधि भी किसानों के बीच प्रचलित है परन्तु इस विधि से दूध दोहन प्रक्रिया में थन को नुकसान पहुँचता है और थनैला रोग होने की संभावना बनी रहती हैं।

(ख) मशीन के द्वारा दूध दोहन की प्रक्रिया वहाँ अपनाई जाती है जहाँ दुधारू पशु तरह के उपकरण प्रयोग में लाये जाते है।

1. पोरटेबल मिल्किंग मशीन
2. फिक्स्ड या स्थाई मिल्किंग मशीन

पोरटेबल मिल्किंग मशीन बंधु डेयरी फार्म में प्रयोग में लाये जाते हैं यहाँ दुधारू पशु की संख्या 10–20 तक होती है। बड़े डेयरी उद्योग जहाँ पशुओं की संख्या अधिक हो वहाँ फिक्स्ड मिल्किंग मशीन प्रयोग में लाये जाते हैं।

स्वच्छ दुग्ध–उत्पादन

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन डेयरी व्यवसाय का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है। दूध अतिशीघ्र बिगड़ने वाला खाद्य पदार्थ है क्योंकि यह जीवाणुओं की वृद्धि हेतु अच्छा माध्यम है। इसलिए दुग्ध उत्पादन, परिस्करण, संग्रहण और वितरण के हर पहलू पर स्वच्छता की सभी जरूरत को पूरा करना आवश्यक है। जीवाणुओं से प्रभावित दूध से बने भोज्य पदार्थ के सेवन से सेप्टिक सोर–थ्रोट, स्कारलेट फीवर व गेस्ट्रो इन्टेराइटिस आदि रोग हो जाते हैं। क्षयं रोग के जीवाणु से पीड़ित पशु के कच्चे दूध के सेवन से यह रोग मनुष्यों में भी फैलते हैं।

स्वच्छ दूध क्या है :

दूध जो स्वस्थ मादा पशु से, स्वच्छ स्थान पर, स्वच्छ ग्वाले द्वारा एवं स्वच्छ बर्त्तन में पशु के बच्चा जन्म देने के पाँच दिन बाद निकाला गया हो वह स्वच्छ दूध कहलाता है। स्वच्छ दुग्ध उत्पादन हेतु निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए:–

➢ पशु का दूध सदैव स्वच्छ पशुशाला में ही निकालना चाहिए, ताकि दूध में किसी प्रकार का संक्रमण नहीं होने पावे। इसके लिए:–

1. पशु का गोबर, मूत्र एवं विछावन आदि को प्रतिदिन पशुशाला से दूर हटाकर गड्ढ़े में दबा देना चाहिए।
2. पशुशाला का फर्श यदि पक्का हो तो उसे दिन में दो बार पानी तथा डिटर्जेन्ट से धोना चाहिए। पानी में फिनायल डालकार धोने से विभिन्न रोगों के किटाणु उत्पन्न नहीं होने पाते हैं।

➢ स्वस्थ एवं स्वच्छ पशु

पशुपालको को पशु की नियमित साफ सफाई पर ध्यान रखना चाहिए ताकि उनके पशु स्वस्थ रहे और पशु में ऐसे रोग नहीं होवे, जो पशुओं से मनुष्यों में फैल सकते हैं जैसे टी•बी•, चेचक, दस्त आदि। अतः दुधारू पशुओं की सफाई निम्नानुसार करना आवश्यक है:–

1. दूध दोहन से एक घंटा पूर्व दुधारू पशु के विशेष रूप से शरीर के पिछले भाग की अच्छी तरह सफाई कर लेनी चाहिए।
2. पशु का दूध निकालते समय उसे स्वच्छ स्थान पर बांधना चाहिए।
3. दूध निकालने से पूर्व तथा बाद में थनों को अच्छी तरह साफ करके स्वच्छ एवं सूखे कपड़े से सुखाना चाहिए।

➢ ग्वाले की सफाई

1. स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के लिए दूध दोहन से पूर्व ग्वाले को पोटैशियम परमैगनेट (लाल दवा) अथवा अन्य एन्टीसैप्टिक के घोल से हाथ धोना चाहिए।
2. प्रत्येक पशु दोहन के पश्चात इस घोल से ग्वाले को अपने हाथ धोने चाहिए।
3. ग्वाले को रोगमुक्त होना चाहिए तथा दूध–दोहन के समय उसके कपड़े स्वच्छ होने चाहिए।

➢ दूध दोहन की उचित विधि

1. दूध दोहन की प्रक्रिया पूर्ण हस्तविधि द्वारा करनी चाहिए ताकि पशु को किसी प्रकार की असुविधा, तकलीफ एवं कृत्रिमता का आभास नहीं हो।
2. दूध दोहन का काम शीघ्र, शांतिपूर्ण एवं पूर्णतया आरामदायक होना चाहिए। किसी भी प्रकार की असावधानी से पशु के कोमल अंगों को चोट पहुँच सकती है।
3. दूध दोहन के समय प्रत्येक थन की शुरू की धार अलग निकालकर इसे फेंक देना चाहिए क्योंकि इसमें जीवाणुओं की मात्रा अधिक होती है।
4. अंगूठे से दूध दोहन की विधि नकलिंग विधि से दूध दोहन पूर्णतः अनुचित है व थनैला रोग उत्पत्ति का कारक भी है। अतः इस विधि का उपयोग कदापि नहीं करना चाहिए।
5. दूध दोहन का कार्य दिन में दो बार नियमित समय पर करना चाहिए। अधिक दूध उत्पादन करने वाले पशुओं में तीन बार भी दूध निकाला जा सकता है।

➢ स्वच्छ चारा–दाना पानी

1. पशु को पीने के लिए स्वच्छ जल उपलब्ध कराना चाहिए। गंदे पानी से पशुओं में बीमारी से स्वच्छ दुग्ध उत्पादन संभव नहीं है।
2. पशु के आहार लेने के उपरान्त जो भी चारा–दाना बचे उसे पशुशाला से बाहर निकाल देना चाहिए क्योंकि गीले चारे–दाने में सड़न उत्पन्न होने से जीवाणु व कवक उत्पन्न हो जाते हैं और रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

➢ बर्त्तनों की सफाई

दूध में अधिकतर कीटाणु बर्त्तनों से ही प्रविष्ट होते हैं। अतः दूध दोहन के बर्त्तन साफ होना अतिआवश्यक है। इसके लिए बर्त्तनों से दूध खाली होते ही उन्हें गर्म पानी एवं डिटर्जेन्ट से अच्छी तरह साफ करके सुखा लेना चाहिए।

दूध रखने का तरीका :

दूध निकालने के बाद इसे तुरन्त ही नाप कर साफ कपड़े अथवा छलनी से छान लेना चाहिए। छानने के लिए उपयोग में लाया जाने वाला कपड़ा अथवा छलनी को प्रत्येक बार दूध छान कर तुरन्त ही स्वच्छ जल से धोकर सूखा लेना चाहिए अन्यथा अगली बार ये दूध की गुणवत्ता कम कर देता है।

➢ शीघ्र दूध वितरण

दूध जीवाणुओं की वृद्धि हेतु एक अच्छा माध्यम है। अतः दूध वितरण में जितनी देर होगी, दूध खराब होने की उतनी ही अधिक संभावना होगी। इससे बचने के लिए दूध उत्पादकों को पशुओं से दूध निकालने के बाद जितनी जल्दी संभव हो सके दूध का वितरण कर देना चाहिए। दूध अतिशघ्र विघटनकारी खाद्य पदार्थ है इसलिए दूध दोहन के तुरंत बाद दूध को चिलिंग सेंटर पर 4–5°C तापक्रम तक ठंढा कर देना चाहिए ताकि दूध के अंदर विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु की वृद्धि को सीमित किया जा सके और दूध का वितरण भी इसी तापक्रम पर होना चाहिए।

हमने सीखा

दूध दोहन :

दूध दोहन की प्रक्रिया में फुल हैण्ड मिल्किंग को सर्वोत्तम विधि मानी जाती है इस विधि के द्वारा दूध दोहन से सुरक्षित दूध की प्राप्ति होती हैं। अगर डेयरी फार्म में दुधारू पशुओं की संख्या अधिक हो तो मिल्किंग मशीन के द्वारा दूध दोहन अधिक लाभकारी होता हैं। स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के लिए पशुओं में थनैला रोग की नियमित जाँच आवश्यक है। पशु के शरीर और थन की अच्छी सफाई के साथ–साथ पशुपालक, ग्वाले और बर्त्तनों की सफाई स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए अनिवार्य है। दूध अतिशीघ्र विघटनकारी खाद्य पदार्थ है इसलिए दूध दोहन के तुरंत बाद दूध को 4°C तापक्रम तक ढंडा करना चाहिए तथा इसका वितरण भी इसी तापक्रम पर होना चाहिए।

अभ्यास

वस्तुनिश्ठ प्रश्न :

1. रिक्त स्थानों की पूर्त्ति करें :

(क) दूध दोहन की सर्वोत्तम विधि ..... है।

(ख) दूध दोहन प्रक्रिया के बाद दुग्ध को ..... तापक्रम पर संग्रहित करना चाहिए।

(ग) जहाँ दुधारू पशुओं की संख्या अधिक हो वहाँ दूध दोहन हेतु ..... प्रयोग में लाए जाते हैं।

(घ) ..... रोग के जीवाणु कच्चे दूध के सेवन से मनुष्यों में भी रोग उत्पन्न कर सकते हैं।

(ङ) बच्चा जन्म देने के ..... दिन बाद निकाला गया दूध स्वच्छ दूध कहलाता है।

2. सही एवं गलत चिह्न लगायें :

(क) दूध दोहन की प्रक्रिया स्ट्रीपिंग द्वारा करनी चाहिए। (.....)

(ख) दूध दोहन का कार्य कभी भी किया जा सकता है। (.....)

(ग) दूध जीवाणुओं की वृद्धि हेतु एक अच्छा माध्यम है। (.....)

(घ) स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए थनैला रोग की नियमित जाँच आवश्यक है। (.....)

(ङ) दूध दोहन प्रक्रिया में आक्सीटोसीन हरमोन मदद करती है। (.....)

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. फुल हैण्ड मिल्किंग से आप क्या समझते हैं ?
2. दूध दोहन का कौन–कौन सी विधियाँ हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. स्वच्छ दुग्ध उत्पादन को प्रभावित करनेवाले महत्वपूर्ण कारकों का उल्लेख करें ?
2. स्वच्छ दुग्ध क्या है ? स्वच्छ दुग्ध उत्पादन हेतु किन–किन बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है ?